४७-२

वर्ष ४४] * * * [अङ्क २

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

संस्करण १,५१,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर फाल्गुन २०२६, फरवरी १९७०

चित्र-सूची

वार्षिक मूल्य भारतमें ९.०० विदेशमें १३.३५ (१५ शिलिंग)

जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

साधारण प्रति भारतमें ५० पै० विदेशमें ८० पै० (१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री

मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर
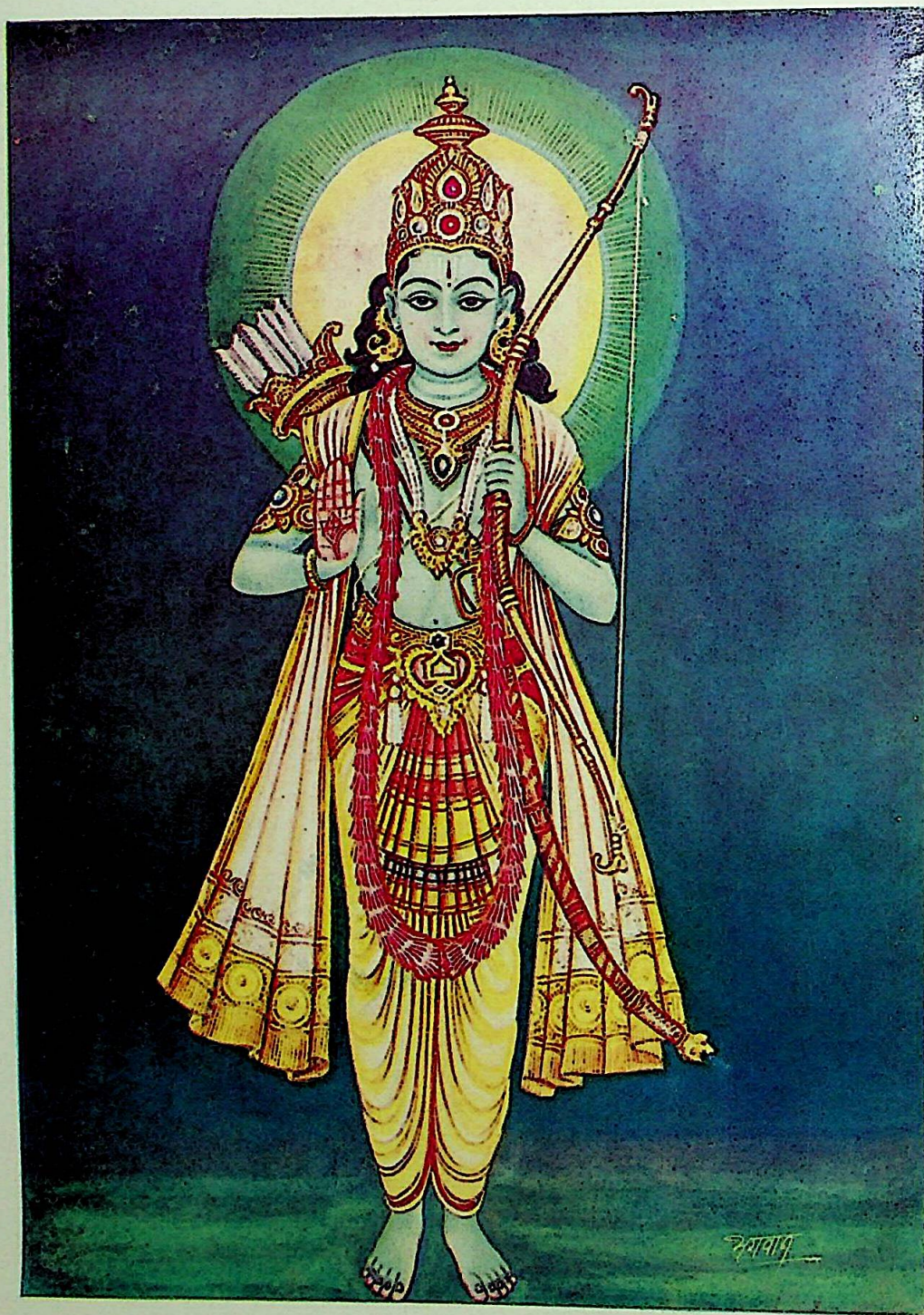
भगवान्—रामावतार [अग्निपुराण अ० ५

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

कल्याण

देवादिदेव भगवन् कामपाल नमोऽस्तु ते । नमोऽनन्ताय शेषाय साक्षाद् रामाय ते नमः ॥
नमः श्रीकृष्णचन्द्राय परिपूर्णतमाय च । असंख्याण्डाधिपतये गोलोकपतये नमः ॥

वर्ष ४४ | गोरखपुर, सौर फाल्गुन २०२६, फरवरी १९७० | संख्या २ पूर्ण संख्या ५१९

अकारण करुण स्वयं भगवान् श्रीराम

अतुल अनन्त अचिन्त्य सद्गुणोंके शुचितम शुभ आकर ।
असुर-दैत्य-तम-निशा-विनाशक रवि-कुल-कमल-दिवाकर ॥
साधु-धर्म-संरक्षण-संवर्धन-हित नित्य धनुर्धर ।
अखिल विश्वगत प्राणिमात्रके सहज समर्थ सुहृद वर ॥
मात-पिता-गुरुभक्ति अनुत्तम भ्रातृ-स्नेह-रत्नाकर ।
राम स्वयं भगवान अकारण करुण भक्त-भव-भयहर ॥

याद रक्खो—जैसे सूर्यमें प्रकाश तथा तेज सहज स्वाभाविक है, जैसे जलमें द्रवता और शीतलता स्वाभाविक है, जैसे चन्द्रमामें चाँदनी और सुधारसमयता स्वाभाविक है, वैसे ही संत, भक्त और भगवत्परायण सात्त्विक पुरुषोंमें दैवी सम्पत्तिके गुण सहज स्वाभाविक होते हैं। उनमें उन गुणोंको लेकर अभिमान नहीं होता। 'मैं सत्यवादी हूँ'—सहज सत्यभाषी संत ऐसा नहीं मानता; 'मुझमें क्रोध नहीं है' 'मैं सहिष्णु तथा क्षमाशील हूँ' अक्रोधी क्षमावान् पुरुष ऐसा नहीं मानता। ये सद्गुण उनके जीवनके स्वरूप बन जाते हैं।

याद रक्खो—जिनमें अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, तप, क्षमा, प्रेम, सहिष्णुता, उदारता, परदुःखकातरता, दया, अस्तेय, अपरिग्रह, त्याग, वैराग्य, ईश्वरमें दृढ विश्वास, आत्मज्ञान, अभय, निश्चिन्तता, आनन्दमयता आदि गुण हैं तथा बढ़ रहे हैं, वे ही वास्तवमें संत या भक्त महात्मा हैं। जो संत कहलाते हैं, अपनेको संत बतलाते हैं, दूसरोंको दैवी गुणोंका उपदेश करते हैं, परमार्थ तथा संयमकी शिक्षा देते हैं, अपनेमें दैवी गुणोंके होनेकी घोषणा करते हैं, पर वास्तवमें जिनमें ये गुण नहीं हैं, वे न संत हैं, न भक्त हैं और न महात्मा ही हैं।

याद रक्खो—जिनके पास वास्तवमें धन-सम्पत्ति है, वे यदि धनी नहीं भी कहलाते, या दरिद्र ही माने जाते हैं, तो भी वे धनी ही हैं; क्योंकि उनके पास धन है। पर जो धनी, सम्पन्न कहलाते हैं, जिनके लिये लोगोंमें ऐसी धारणा भी है कि ये धनी हैं और जो व्यवहार भी धनीका-सा करते हैं, लेकिन जिनके पास धन नहीं है, वे वास्तवमें निर्धन ही हैं। इसी प्रकार जिनके जीवनमें संतके स्वाभाविक दैवी गुण वर्तमान हैं, उन्हें चाहे कोई संत कहे या माने, अथवा न कहे न माने, वरं कोई चाहे उन्हें असंत भी कहते—मानते हों, तो भी वे किसीके कहे या माने जानेके अनुसार असंत नहीं हो सकते।

याद रक्खो—इसीलिये संत या भक्त कहलानेकी या संत या भक्तके नामसे परिचित होनेकी चेष्टा मत करो। संतके गुण या भक्तिको, जो भगवदीय दैवी गुणोंका ही दूसरा नाम है—निरन्तर अपने जीवनमें लानेकी चेष्टा करो। दूसरे क्या कहते हैं, क्या मानते हैं, इसकी ओर मत देखो। केवल अपनी ओर देखो और सावधानीके साथ देखो—दैवी सम्पत्तिके गुण उत्तरोत्तर बढ़कर सहज जीवनरूप बन रहे हैं या नहीं। यदि दैवी सम्पत्तिके गुण बढ़ रहे और सहज जीवनरूप बन रहे हैं तो उन्हें छिपाते हुए और भी बढ़ाते रहो। अपने सद्गुणोंका ढिंढोरा पीटना तो उनका तिरस्कार करके लौकिक सम्मानकी भूखको, जो गिरानेवाली है, बढ़ाना है। यह तो करो ही मत। हमारे अंदर कोई यह गुण बतावे और सम्मान करे तो उसे स्वीकार न करो। दैवी सम्पत्तिके गुणोंके मूल्यके रूपमें यदि सम्मान स्वीकार कर लिया और सम्मानकी लालसा कहीं बढ़ चली तो दैवी सम्पत्तिके गुण घटने लगेंगे, लुप्त होने लगेंगे और उनके स्थानपर दम्भ आकर लोकरञ्जनमें जीवनको लगा देगा। जीवनमें पतनकी अशुभ घड़ी आ जायगी। अतएव सावधान रहो।

याद रक्खो—मान, बड़ाई, सत्कार, पूजा, विषय-भोगोंकी सुविधा तथा कामना आदि सब विघ्न हैं। राहके लुटेरे हैं और दैवी सम्पत्तिका हरण करनेके लिये ही आया करते हैं। इनसे सदा बचते रहो। बड़ी सावधानीसे इन्हें हटाते रहो। जरा-सा भी इनको आश्रय दिया कि फिर तो ये अपना प्रभुत्व जमाकर सारा अध्यात्म-धन छीन लेंगे। अतएव संत बनो, कहलाओ मत; भक्त बनो, कहलाओ मत—इसीमें कल्याण है।

'शिव'

परमात्म-तत्त्वविवेचन

[पूज्यपाद योगिराज अनन्तश्री देवरहवा बाबाका उपदेश]

(प्रेषक—श्रीरामकृष्णप्रसाद)

दयामय प्रभुकी अनन्त शक्ति, अनन्त लीला हैं, उनकी शक्ति और लीलाओंसे यह समस्त संसार ओत-प्रोत है। संसारकी सभी वस्तुओंमें, सभी प्राणियोंमें परमात्मा विद्यमान हैं। इस प्रकार जो मनुष्य सभी प्राणियोंको तथा सभी वस्तुओंको परमात्मामें स्थित देखता है तथा सभी प्राणियोंमें, सभी वस्तुओंमें परमात्माको स्थित देखता है, ऐसे मनुष्यकी सदा सर्वत्र भगवद्-दृष्टि हो जाती है। उसको सदा आनन्द-ही-आनन्द रहता है। उसको शोक-मोहादिकी छाया भी स्पर्श नहीं कर सकती।

ऐसे ही पुरुष यथार्थमें परमात्माकी एकात्मताको जानते और समझते हैं। परमात्माको जानना और समझना भी शुद्ध मनके द्वारा सम्भव है। शुद्ध मन वह है, जिसमें कोई कामना न हो, जो सर्वथा निष्काम हो। जो मन कामनायुक्त है, वह अशुद्ध है। जैसे अशुद्ध दर्पणमें हम अपना रूप नहीं देख सकते, वैसे ही कामनायुक्त अशुद्ध मनसे हम परमात्माको नहीं पा सकते। इस काम और निष्कामकी कसौटीपर हम अपने मनकी स्थितिको निरन्तर जाँच सकते हैं।

चूँकि परमात्मा सर्वत्र हैं, इसलिये उसका जानना और समझना भी हमलोगोंके लिये सुलभ है, ऐसा हमारे शास्त्र और इतिहास बतलाते हैं। परमात्माके अनन्त नामोंमें एक नाम उनका शालिग्राम है। शालिग्रामकी लोग पूजा करते हैं, लेकिन उसका अर्थ नहीं जानते। 'शाल' नामका एक वृक्ष है—**'शालेन वृक्षविशेषेण गम्यते ज्ञायते स शालिग्रामः'**। अर्थात् जो शाल नामक वृक्षके द्वारा जाना गया हो, उसका नाम 'शालिग्राम' है। संकलायन मुनिने इसी वृक्षके द्वारा भगवान्की प्राप्ति की थी। हमारे यहाँ सैकड़ों पाषाणकी मूर्तियाँ हैं, जिनकी लोग स्थापना और पूजा करते हैं और अपने-अपने शुद्ध संकल्पोंके द्वारा भगवान्की स्थितिका अनुभव करते हैं।

भगवान् इसी प्रकार अपनी अनन्त लीलाओं और गुणोंके द्वारा अपने भक्तोंके अंदर प्रकट हुआ करते हैं, जो हमलोगोंके लिये वर्णनातीत है। सबको यह सदा स्मरण रखना चाहिये कि जिसने भगवान्को अपने अंदर धारण कर लिया, उसको एक-एक करके भगवान्के सभी गुण प्राप्त हो जायँगे। हमारा शरीर भी एक विचित्र देवमन्दिर है, जिसकी वास्तविक जानकारी योगियोंको ही सम्भव है—

मन तो हमार गगन चढ़ि जाई
मानसरोवर पैठि नहाई।
त्रिकुटि महलमें ठाकुरद्वारा
जिसके भीतर चमके तारा॥
उजियाला है उजियाला है।
घर भीतर पंखा निराला है॥

हमारा मन कहाँ-कहाँ छलाँग मारता है? उसको यह पता नहीं होता कि हमारे अंदरमें ही भगवान् स्थित हैं। हमारी नाड़ियोंद्वारा वायुका संचार हो रहा है, जो एक निराला पंखा है। जिसके अंदर भगवान्का विश्राम है। इसका बोध योगके द्वारा सुलभ है। हमारे शरीरमें मुख्य नाड़ियाँ चौदह हैं, जो स्थानविशेषपर रहकर अपना कार्य कर रही हैं। इनका शोधन योगीलोग ही कर सकते हैं और अपने मन-मन्दिरको शुद्ध और पवित्र करके उसमें भगवान्को आसीन रखते हैं। हमारे शरीर-में जो मुख्य चौदह नाड़ियाँ हैं, उनके नाम निम्न प्रकार हैं—

(१) सुषुम्णा, (२) पिङ्गला, (३) इडा, (४) सरस्वती, (५) पूषा, (६) वरुणा, (७) हस्तिजिह्वा, (८) यशस्विनी, (९) अलम्बुषा, (१०) कुहू, (११) विश्वोदरा, (१२) पयस्विनी, (१३) शङ्खिनी और (१४) गान्धारा।

इन चौदह नाड़ियोंमें सुषुम्णा, पिङ्गला, इडा—ये

तीन नाड़ियाँ सबसे प्रधान हैं और इनमें भी सुषुम्णा सर्वश्रेष्ठ है । पीठके मध्यभागमें जो मेरुदण्ड है, जहाँ हड्डियोंका विशेष समूह है, वहाँ सुषुम्णा नाड़ीका स्थान है । सुषुम्णाके वाम भागमें इडा और दक्षिण भागमें पिङ्गलाका स्थान है और नाभिके दो अँगुल नीचे कुण्डलिनीका स्थान है । हर नाड़ीके अलग-अलग देवता हैं, जो हमारे शरीरमें इन नाड़ियोंके साथ निवास करते हैं । मुख्य जो तीन नाड़ियाँ हैं—सुषुम्णा, इडा और पिङ्गला—उनमें सुषुम्णाके देवता हैं शिव, इडाके देवता हैं भगवान् विष्णु और पिङ्गलाके देवता हैं ब्रह्माजी । इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और शिव हमारे शरीरमें सदा निवास कर रहे हैं । इडा नाड़ीमें चन्द्रमा संचार करते हैं और पिङ्गला नाड़ीमें सूर्य संचरण करते हैं । ब्रह्मा, विष्णु और महेशके साथ-साथ सूर्य और चन्द्रमाका भी समावेश हमारे शरीरमें है । इस प्रकार विशुद्ध मनसे जो अपने शरीरमें उस अन्तःप्रकाशस्वरूप शुद्ध परमात्मतत्त्वका साक्षात्कार करता है, वह क्या नहीं कर सकता ? वह कालपर भी विजय प्राप्त कर लेता है ।

खाद्यते न च कालेन बाध्यते न च कर्मणा ।
साध्यते न च केनापि योगयुक्तः समाधिना ॥

उनको न काल खा सकता है और न उन्हें कर्मका बन्धन होता है और न उनसे कोई चीज असाध्य है । वे जीवन्मुक्त हो जाते हैं । वे न अपनेको देह मानते हैं, न इन्द्रिय-समुदाय, न प्राण, न मन, न मनुष्य, न गन्धर्व, न किंनर, न ब्राह्मण, न शूद्र । वे अपनेको एक मात्र उस परम पिता परमात्माका अंश समझते हैं । उनके विचारमें 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म' है । यही वास्तविक परमात्मतत्त्व है ।

सत्संग-वाटिकाके बिखरे सुमन

१–जहाँ भगवान्में पूर्ण विश्वास होता है, वहाँ चिन्ता, भय, निराशा—ये तो रहते ही नहीं, आशा, सम्भावना—ये भी नहीं रहतीं । वह इस प्रकारकी एक स्थिति होती है, जिसमें केवल भगवान् रह जाते हैं और भगवान् जो कुछ करते हैं, जैसे करते हैं, उसमें उसकी स्वाभाविक बुद्धि होती है । जहाँ मङ्गल बुद्धि है—भगवान् जो करेंगे, मङ्गल ही करेंगे—वहाँ अमङ्गलकी सत्ता कहीं-न-कहीं मनमें वर्तमान अवश्य है । मङ्गलकी अपेक्षामें अमङ्गल साथ है । पर जहाँ मङ्गल-अमङ्गलका, आशा-निराशाका प्रश्न ही नहीं है, केवल भगवद्विश्वास है—वह स्थिति स्वाभाविक है । अतः भगवद्विश्वासका अर्जन करना चाहिये ।

२–'भगवान् मङ्गल ही करते हैं'—इस मान्यतामें अमङ्गलका भय तो चला गया; पर अमङ्गल कोई वस्तु है—यह प्रश्न बना रहता है । मङ्गल-अमङ्गलकी सत्ता जहाँ भगवान्के अतिरिक्त मान्य है, वहाँ भगवान्का पूर्णतया बोध नहीं है । भगवद्विश्वासका पूर्णतया बोध होनेसे मङ्गलकी आशा और अमङ्गलका भय—ये दोनों ही नहीं रहते ।

३–भगवद्विश्वासका स्वरूप है—भगवान्के सिवा किसी भी वस्तुकी आशा-आकाङ्क्षा न रह जाना । ऐसे विश्वासके अधिकारी कोई विरले ही हैं । सांसारिक वस्तुके लिये भी विश्वास किसी भाग्यशालीको ही होता है । इसीसे अर्थार्थी भक्तकी भी भगवान्ने उसे 'सुकृती' बताकर बड़ी महिमा गायी है । 'भगवान्की कृपासे मेरा प्रत्येक कार्य हो जायगा'—यह निश्चित विश्वास सबको नहीं होता । अपना मन भगवान्के विश्वासमें किसी 'निमित्त' की आवश्यकता अनुभव करा देता है । मनमें कुतर्कना उत्पन्न होती है—"भगवान् स्वयं आकर थोड़े ही देते हैं, किसी-न-किसी 'निमित्त'से देते हैं । अतः अमुक रीतिसे अमुक चेष्टा करनी ही चाहिये ।" इस प्रकारकी कुतर्कना भगवद्विश्वासमें कमीको प्रकट करती है ।

४–विश्वासी पुरुषमें एक बात अवश्य होती है कि जिसका वह विश्वासी होता है, उसके प्रति वह स्वाभाविक अनुगत होता है, स्वाभाविक उसके प्रति श्रद्धालु होता है, वह उसीका चिन्तन करता है और उसीके अनुकूल जीवन बनाता है । इस कसौटीपर हम अपनेको परखते रहें कि हमारा भगवान्पर विश्वास है कि नहीं ।

५–जहाँ भगवान्‌पर परम विश्वास है—वहाँ 'भगवान हमारा कार्य कर देंगे, हमारा दुःख दूर कर देंगे, हमें ज्ञान दे देंगे, हमारा मङ्गल करेंगे'—इस प्रकारकी आशा नहीं रहती। वहाँ भगवान्‌पर सहज विश्वास है। जहाँ मङ्गलकी सत्ता है, वहाँ अमङ्गलके नाशकी अपेक्षा है। यह अवश्य है कि भगवान्‌के मङ्गलविधानपर विश्वास करनेवालेमें अमङ्गलसे होनेवाले शोक, चिन्ता, भय आदि नहीं होते, पर मङ्गलकी आशा तो उसे रहती ही है—जैसे 'भगवान्‌का भजन करते बहुत दिन हो गये, उसका कोई मङ्गल फल तो अभी नहीं मिला।' पर जो परम विश्वासी भक्त है, उसमें इस प्रकारकी आशा नहीं रहती। वह सहज रूपसे भजनके लिये ही भजन करता चलता है।

६–भगवान्‌के मार्गपर चलनेवालोंके लिये बहुत-सी आवश्यक बातोंमें एक आवश्यक बात है—'द्वन्द्व-सहिष्णुता'। हर्ष-विषाद, सुख-दुःख, अनुकूलता-प्रतिकूलता—इन सबमें मन क्षुभित न हो।

७–जगत्‌के विषयोंमें अनुकूलताकी खोज परमात्माकी खोजको बंद कर देती है और अनुकूलताकी खोज पल-पलपर प्रतिकूलताका बोध कराती है।

८–सबसे बड़ी हानिकी बात है—मनमें बुराईका भरना। अतएव अपने तथा जगत्‌के लाभके लिये जहाँ-जहाँ शुभ है, उसे देखे और ग्रहण करे। सब लोग भलाई देखें और भलाई करें तो जगत्‌से बुराई नष्ट हो जाय। पर मनुष्य करता क्या है कि अपनी बुराईको तो बनाये रखता है और दूसरेकी बुराईको नष्ट करना चाहता है। किंतु बुराईसे बुराई नष्ट नहीं होती; उससे बुराईका वितरण होता है एवं बढ़ती है। हमारी बुराई जाकर दूसरेमें भी बुराई उत्पन्न करती है एवं उसकी पहलेकी बुराईको बढ़ाती है। हमारे मनका अच्छा-बुरा भाव दूसरोंके मनमें निरन्तर जाता रहता है—इस सिद्धान्तको सदा स्मरण रखना चाहिये।

९–वह मनुष्य भाग्यवान् है, जिसके जीवनमें परदोष देखनेका एवं कहनेका अवसर नहीं आता। वह मनुष्य तो परम भाग्यवान् है, जिसे अपने दोष देखने एवं उन्हें निकालनेका अवसर मिलता है।

१०–कहींपर भी साधक अपनेको 'पहुँचा हुआ' न समझे। जहाँ 'पहुँचा हुआ' समझा कि अटका। पहुँचनेपर तो पहुँचा हुआ समझता नहीं, बिना पहुँचे पहुँचा हुआ समझनेपर वहीं रुकावट आ जायगी।

११–मनुष्ययोनि बहुत उत्तम, बड़ी दुर्लभ है, वह बड़े पुण्यसे मिलती है; पर उसमें बड़ा खतरा है, यदि वह भगवान्‌की ओर न लगकर भोगोंकी ओर लगे। अन्य योनियोंमें ज्ञान सीमित, बुद्धि सीमित, क्षेत्र सीमित है, पर मनुष्ययोनिमें तो इतनी विकसित बुद्धि है, इतनी महान् शक्ति है, इतना विस्तृत क्षेत्र है कि वह भयानकसे भयानक लाखों-करोड़ों पाप कर सकता है। उन पापोंका भोग अनन्त योनियोंमें भोगना पड़ता है। इस प्रकार बड़े सौभाग्यसे मनुष्य बनकर जिसने बड़े-बड़े पाप किये—तो यह उसका कितना बड़ा दुर्भाग्य है। इससे अच्छा तो था कि मनुष्ययोनिमें वह पैदा ही नहीं होता। अपने एवं जगत्‌के विनाश, पतन एवं अमङ्गलके जीवनकी अपेक्षा तो पैदा न होना ही श्रेयस्कर है।

१२–किसीकी जागतिक उन्नति चाहे न हो, चाहे वह जगत्‌से सर्वथा उपेक्षित हो, जागतिक सामग्रियोंसे अभावग्रस्त हो। पर वह परम मङ्गल-रूप है, वह जगत्‌की बड़ी-से-बड़ी सेवा कर रहा है, यदि उसका जीवन भगवान्‌की ओर लगा है।

१३–भगवान्‌की ओर लगनेको जगत्‌के बड़े-से-बड़े लाभकी तुलनामें भी बड़ा मानना चाहिये। वास्तवमें तो जागतिक लाभ लाभ है ही नहीं। उसे लाभ मानना बड़ा प्रमाद है, भ्रम है।

१४–भगवान्‌में न लगकर विषयोंमें लगे रहना—यह 'आध्यात्मिक आत्महत्या' है।

१५–भगवान्‌के स्मरणका वियोग विषयी पुरुषके पुत्र-मरण-के वियोगसे भी अधिक दुःखदायी और भगवान्‌के स्मरणका आनन्द पुत्र-प्राप्तिके सुखसे अधिक अनुभव हो तो समझना चाहिये कि मन भगवान्‌में लगा है।

१६–वह जडता, निर्धनता, अपमान, निन्दा, अभाव सदा अच्छे हैं, जो भगवान्‌में लगावें। वह बुद्धिमानी, वह धन, वह बड़ाई, वह बड़प्पन सर्वथा त्याज्य हैं, जो भगवान्‌से हटावें।

१७–संसारके पदार्थोंका प्राप्त होना भगवत्कृपा नहीं है। संसारके पदार्थ प्राप्त होनेपर उनमें आसक्तिका न होना

और उनके संरक्षण-संवर्धनमें कोई पाप न बनना—भगवत्कृपा है।

१८—संसारके भोगोंसे किसीको भाग्यवान् मानना, उसके सांसारिक ऐश्वर्यको देखकर उसे भगवत्कृपा-प्राप्त स्वीकार करना बड़ी भूल है। भाग्यवान् वह है, भगवत्कृपा-प्राप्त वह है, जिसका जीवन भोगोंमें न लगकर भगवान्‌में लगा है।

१९—मानव-जीवन परम दुर्लभ है। इस जीवनको यदि हमने भगवान्‌को प्राप्त किये बिना ही खो दिया तो यह इतनी बड़ी हानि होगी कि जिसकी पूर्ति अनेक जन्मोंके बादतक भी नहीं होनेकी है।

२०—भगवान्‌की ओर जानेवाला जीवन यदि किसीका है तो वह मानव है; नहीं तो वह दानव है या और कुछ है।

२१—बड़ी-से-बड़ी भूल यह है कि मनुष्य भगवान्‌को भूल रहा है।

२२—दूसरोंके भावोंको मापनेका गज है हमारा अन्तःकरण। हमारा अन्तःकरण शुद्ध न हुआ तो लोगोंमें न हुए दोष भी हमें दीखेंगे और उनके गुण भी दोष बन जायँगे हमारी अशुद्धताके कारण।

२३—जिसके पास जागतिक भोग हैं, वह ऊँचा नहीं है; जिसका अन्तःकरण ऊँचा है, वह वास्तवमें ऊँचा है—जिसके मनमें ऊँचापन है, वह ऊँचा है। जिसकी क्रियाएँ ऊँची हैं, वह ऊँचा है; विषय सामने रहनेपर भी जो प्रभावित नहीं होता, वह ऊँचा है।

२४—जिसके मनमें सात्त्विक आनन्द है, वह साधनमें बढ़ रहा है; जिसके मनमें विषयानन्द है, वह गिर रहा है और जिसके मनमें प्रमाद-आलस्य हैं, वह गिर चुका है।

२५—भगवान्‌को भूलकर और संसारके पदार्थोंमें लाभ मानकर उनके बटोरने एवं उपभोग करने लगनेमें प्रधानतः तीन हानियाँ होती हैं—

(१) जो समय मिला था भगवान्‌के भजनके लिये, वह नष्ट हो गया।

(२) जो अवसर मिला था भगवान्‌का भजन करके भगवान्‌को पानेके लिये तथा संसारके बन्धनसे मुक्त होनेके लिये, वह हाथसे चला गया।

(३) संसारके कार्योंमें लाभ मानकर जो नये-नये दुष्कर्म किये, उनसे नाना नरकोंकी प्राप्ति निश्चित कर ली।

२६—भगवान्‌के स्मरणको छोड़कर जिस-किसी व्यापार, स्मरण, चेष्टामें अपना समय लगाना परम लाभके अवसरको खो देना है। दूसरा कोई लाभ लाभ ही नहीं है, भगवान्‌का स्मरण-मनन ही परम लाभ है।

२७—मनुष्य जहाँ कहीं भी हो, जिस किसी परिस्थितिमें हो, वहीं, उसी स्थितिमें भगवान्‌के साथ अपने मनका सम्बन्ध जोड़ ले। भगवान्‌का स्मरण हुआ कि 'भगवान्‌की स्मृतिके प्रतापसे दोष-दुःख नष्ट हुए।'

२८—दो सरल साधन हैं—

(१) जगत्‌के पदार्थोंमें सुखकी कल्पनाके स्थानपर दुःखकी भावना करे।

(२) परम सुख भगवान्‌में है, इस विश्वासके साथ भगवत्स्मरण करता रहे।

२९—त्यागके दो मुख्य रूप हैं—

(१) वस्तुकी सत्तामें अनास्था हो जाय।

(२) जगत्‌के पदार्थोंमें मल-बुद्धि, विष-बुद्धि हो जाय।

इनमेंसे कम-से-कम एकको अपनाना ही होगा, भगवान्‌की ओर बढ़नेके लिये।

३०—भोगोंमें जो सुखकी आशा है, वह दुराशामात्र है। 'भोगोंमें सुख है'—यह भ्रान्ति हो रही है। इसी भ्रान्तिके कारण ही हमलोग अनादि कालसे भटक रहे हैं। इस भ्रान्तिको दूर करके, एकमात्र 'परमात्मामें ही सुख है'—इस आस्थाको दृढ़ करना चाहिये। यह आस्था दृढ़ होनेसे भगवान्‌की प्राप्तिके साधन होने लग जायँगे।

३१—'भोगोंमें सुख है'—यह भ्रान्ति इतनी दृढ़ है कि बार-बार भोगोंके भोगनेपर भी जब मन सुखी नहीं होता तो उस दशामें भी हम मानते हैं कि 'जैसी, जितनी भोग-सामग्री चाहिये थी, वैसी, उतनी हमारे पास नहीं है, इसीसे हमें सुख नहीं मिला है।' इस धारणासे हम उस भोगकी ओरसे उपरत नहीं हो पाते। उस अवस्थामें भी हम यह निश्चय नहीं कर पाते कि भोगोंमें सुख नहीं है। यदि हमारी यह धारणा दृढ़ हो जाय कि भोगोंमें सुख नहीं है तो स्वाभाविक ही मन उनसे हट जायगा।

३२—भजनमय जीवन किसीका हो और भगवान्‌के मिलनमें देर हो—यह बात हो नहीं सकती। जैसे सूर्यका

प्रकाश हो और अन्धकार बना रहे—यह बात सर्वथा असम्भव है। पर भजन वह है, जिसको छोड़कर भक्त रह ही न सके; भजन वह है, जो भगवान्‌को खींच लावे।

३३—प्रेममें अपनेको भूल जाना—बिल्कुल खो देना है। अपना 'अलग' कुछ रह न जाय। 'अपना भला' भी अलग न रह जाय; उसकी भी उसे विस्मृति हो जाय। अपने आपको प्रेमास्पदके चरणोंपर समर्पित कर वह सब कुछ भूल जाता है।

३४—जैसे श्रवणके अधिकारी होते हैं, वैसे ही कहनेके भी अधिकारी होते हैं। कहनेवालेको अनुभूति होनी चाहिये उस वस्तुकी, उसके जीवनमें होनी चाहिये वह वस्तु! तभी उसका कहना सार्थक होता है। कहनेवाला जो कहता है, वह उसके जीवनमें होना चाहिये।

३५—मनुष्यके जीवनमें जब उसके सौभाग्यके दिन होते हैं, तब उसे भगवान्‌पर विश्वास होता है और जब उसके अभागे दिन होते हैं, तब उसे भगवान्‌पर अविश्वास होकर विषयोंके प्रति अनुराग होता है। भगवद्विश्वास सौभाग्यका चिह्न है और भगवान्‌पर अविश्वास होकर भोगोंकी ओर रुचि—यह दुर्भाग्यका चिह्न है।

३६—जैसे सूर्यके प्रकाशके सामने कोई भी अन्य प्रकाश व्यर्थ हो जाता है, वैसे हो भगवत्प्रेम-सुखके सामने जगत्‌का प्रेम एवं सुख टिक नहीं सकते। जबतक जगत्‌के प्रेम-सुख सहन होते हैं, तबतक भगवत्प्रेम-सुखका अनुभव नहीं हुआ, यह समझना चाहिये।

३७—भगवान्‌के पादारविन्दका जिसे अनुराग प्राप्त हो गया, उसे जगत्‌में और कहीं प्रेम दीखेगा ही नहीं। भगवच्चरणोंके प्रेमकी पहचान क्या है? जब ऐसा प्रेम और कहीं रह न जाय। यदि कहीं अन्य पदार्थोंमें प्रेम अवशिष्ट है तो समझना चाहिये कि किसी लौकिक पदार्थके प्रेमको ही हमने भगवत्प्रेम मान लिया है। भगवत्प्रेम प्राप्त होनेपर दूसरे पदार्थोंमें प्रेम ठहर नहीं सकता; सब स्थानोंसे प्रेम खिंचकर स्वयं चला आता है—एकमात्र भगवान्‌के चरणोंमें।

३८—अपनी उन्नति हो रही है, अपना भाग्य चमक रहा है, अपना जीवन विकासकी ओर जा रहा है, इसकी जाँच मनुष्य स्वयं कर ले। जाँच है कि उसे विषय खारे लगे कि नहीं; विषयोंमें दोष दीखने लगे कि नहीं; भगवान्‌की ओर रुचि हुई कि नहीं; भगवान्‌के नाम-लीलामें रस आने लगा कि नहीं। दूसरे हमें उन्नत मानें चाहे नहीं; इसका कुछ भी मूल्य नहीं है। हमारी भगवान्‌की ओर रुचि हो गयी तो हमारे जीवनकी उन्नति हो रही है—यह निश्चित है।

३९—भगवत्प्रेमकी आग प्रज्वलित करो हृदयमें, चित्त अशान्त हो जायगा भगवान्‌के न मिलनेमें। फिर विषम-ज्वाला शान्त हो जायगी; मनकी मलिनता एवं चञ्चलता नष्ट हो जायगी और मिलेगी भगवान्‌के प्रेमकी सुधा-माधुरी।

४०—जो भगवान्‌में लगा दे वही धर्म है और जो भगवान्‌से हटा दे, वह अधर्म है—फिर चाहे उसका नाम कुछ भी हो।

४१—अपना सब कुछ विनाश होनेपर भी यदि भगवान्‌का चिन्तन मनमें उत्पन्न हो जाय, उसे परम सौभाग्य मानना चाहिये। जगत्‌के पदार्थोंके बदलेमें भगवच्चिन्तनका प्राप्त होना वास्तवमें बहुत ही सस्ता है।

४२—'भोगोंमें सुख है'—यह अविद्याका मोटे-से-मोटा रूप है। चाहे वे भोग खानेके हों, पहननेके हों, स्पर्शके हों, सूँघनेके हों और चाहे सुननेके हों। अतएव जीवनमेंसे जितने भी विषय हटें तो समझना चाहिये कि उतना विघ्न हटा है।

४३—हम अधम-से-अधम हों, पर हैं तो माँके बच्चे ही। हम माँसे कह सकते हैं—'तू मेरी माँ है, मैं तेरी गोद नहीं छोड़ूँगा।' माँसे डरना नहीं है, वह हमारे अधिकारकी वस्तु है। हम अपने इस अधिकारका उपयोग करें तो भगवान् उसे स्वीकार करेंगे।

४४—'व्याकुलता'का स्वरूप हम सबको मालूम है। हम लोग विषयोंके लिये रात-दिन व्याकुल होते रहते हैं। बस, व्याकुलताका जो विषय बना हुआ है, उसे बदल देना है। विषयोंके लिये जो व्याकुलता है, वह भगवान्‌के लिये हो जाय। भगवान्‌के लिये हमारे चित्तमें छटपटाहट हो जाय; उनके बिना हमसे रहा न जाय। इतना हुआ कि काम बना। हमारे मनमें भगवान्‌को प्राप्त करनेकी व्याकुलता आते ही वैसी ही व्याकुलता भगवान्‌में उत्पन्न होगी और भगवान् सत्यसंकल्प हैं, अतएव भगवत्प्राप्ति होते देर नहीं लगेगी।

४५—हमारे संकल्पका परिणाम सांसारिक पदार्थोंपर नहीं होता। पर यदि भगवान्‌पर विश्वास करके हम उनके लिये संकल्प करेंगे तो हमारा वह संकल्प भगवान्‌में प्रतिबिम्बित हो जायगा। वृन्दावन-लीलाका यही रहस्य है। वृन्दावनमें नाचनेकी, गानेकी, चोरीकी, खेलकी लीलाएँ भगवान्‌ने क्यों कीं? इस प्रश्नका उत्तर यही है कि विश्वासी भक्तोंके संकल्पसे। एक गोपीने कामना की, संकल्प किया—

'मेरे घरमें भगवान् आयें, मक्खनका मटका छींकेसे उतारकर उसमेंसे स्वयं मक्खन खायें और सखाओंको खिलायें तथा मैं खड़ी-खड़ी देखूँ।' भगवान् सदा तृप्त हैं; न उनमें कोई कामना है और न नन्दबाबाके यहाँ किसी चीजकी कमी है। पर उस गोपीकी कामनाकी, संकल्पकी पूर्तिके लिये भगवान्ने उसके घरमें प्रवेश करके उसके छींकेसे मटका उतारा और सखाओंके साथ उसका भोग लगाया। यह भी साधनाकी एक पद्धति है। अतएव भगवान्के लिये संकल्प एवं कामना करनी चाहिये। वे एक दिन पूरी होकर ही रहेंगी।

४६—जब हम किसीसे कहते हैं कि 'हमारा भगवान्में विश्वास करा दो' तो इसमें हमारा अविश्वास ही बोलता है। ऐसे ही जो कहता है कि 'मैं भगवान्में तुम्हारा विश्वास करा दूँगा,' तो वहाँ दम्भ बोलता है। जो नित्य हमारे पास हैं, हमारे मनकी जाननेवाले हैं, उन्हें हम क्यों नहीं कहते? 'भगवान् हमारी प्रार्थना सुनते हैं'—इस विश्वासको तोड़कर विश्वास करा देनेके लिये किसीसे प्रार्थना करना क्या अर्थ रखता है? जो अपने अविश्वासको मिटानेके लिये विश्वासपूर्वक पुकारता है, भगवान् उसे अवश्य सुनते हैं।

४७—भगवान् हैं, वे सर्वशक्तिमान् हैं, सर्वज्ञ हैं और सुहृद् भी हैं—हमारे हितका काम भी करते हैं—ऐसे विश्वासके साथ भगवान्को पुकारें तो भगवान् तुरंत सुनते हैं। विश्वासपूर्वक भगवान्को पुकारनेसे ऐसे आश्चर्यजनक परिवर्तन हो जाते हैं कि जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

४८—विषयासक्त पुरुष विषयोंमें विश्वास करके कभी सुखी हो ही नहीं सकता; यह सर्वथा असम्भव है।

४९—जिसको जितनी अधिक आवश्यकता होगी, वह उतना अधिक दुखी होगा; उसके द्वारा उतने ही अधिक पाप होंगे।

५०—जहाँ-जहाँ दुःख देखे, वहाँ-वहाँ वह अपनेको होम दे—यह भक्तका काम है, साधकका काम है। दुखीके दुःखको प्रारब्धकी चीज कहकर टाल देना, दुखीके प्रति उपेक्षा कर देना—महापाप है। यह मानवताकी माँग है कि मनुष्य अपने जैसे मनुष्योंके दुःखकी बात सुने-समझे। ऐसा करके मनुष्य भगवान्की प्रसन्नता अर्जन करता है, जो परम दुर्लभ है।

भगवान् श्रीरामका आदर्श चरित्र

(लेखक—याज्ञिकसम्राट् पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा गौड, वेदाचार्य)

भारतीय पुराणों और काव्योंमें भगवदवतारकी अनेकविध कथाएँ रूपकालङ्कारमें वर्णित हैं। निराकार ईश्वरकी साकारताको ही 'अवतार' कहा जाता है। 'तत्सृष्ट्वा तदनुप्राविशत्।'—इस मर्मोक्तिके अनुसार सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि ही ईश्वररूप है। सामान्यतः सम्पूर्ण संसारके अवतार होनेपर भी कुछ विशिष्ट विभूतियाँ अवताररूपमें परिगणित हुई हैं, जिनके द्वारा—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

—इस भगवद्वचन (गीता ४। ८) की वास्तविक चरितार्थता सुस्पष्टतः मानव-जीवनको सर्वदासे प्रभावित करती आ रही है। उन विशिष्ट अवतारोंमें भी मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका अवतार सर्वप्रमुख एवं नितान्त जगत्कल्याणकारक है!

इस संसारमें मानव-जीवनका निर्बाध अस्तित्व मानवके कतिपय सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं नैतिक तत्त्वोंकी समर्याद स्थितिपर निर्भर है। यदि उपर्युक्त क्षेत्रोंमें निर्मर्याद स्थिति उत्पन्न हो जाती है, तो इस संसारमें मानव-जीवन ईर्ष्या, द्वेष, कपट, व्यभिचार आदिके झंझावातोंकी चपेटमें पड़कर अस्त-व्यस्त एवं दुःखपूर्ण हो जाता है। उस समय मानव-जीवनमें स्फूर्तिका अत्यन्त अभाव उसके जीवनको भारबहुल बना देता है। नैतिक बल, जो धर्मका दृढ़ आधार है, उसके बिना परस्पर 'मात्स्य-न्याय'का वातावरण विकसित होने लगता है। ऐसी स्थितिमें गीता (१०। ४१) की—

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥

—इस उक्तिके अनुसार सृष्टिके किसी अनिर्वचनीय तेजसे आविर्भूत अंश (जीव) को 'ईश्वरावतार' कहा जाता है। इस प्रकार भारतसे पृथक् अन्य देशोंमें भी देश, कालकी उपयोगिताकी दृष्टिसे मानव-जातिने विभिन्न अवतारोंका अनुमोदन किया है और करती है। भारतकी वैदिक-परम्परामें अवतारोंका वर्णन कुछ विशेष महत्त्व रखता है। चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था भारतके आर्थिक दृष्टिकोणसे देश-कालानुसार पर्याप्त सुन्दर प्रमाणित हो चुकी है। साथ ही देश-

कालके अनुसार जन्मना न सही, किंतु कर्मणा तो विश्वभरने माना ही है। गुण-कर्मके अनुसार उद्भूत इस व्यवस्थासे सदैव समाज मर्यादित रहा करता है, परंतु जब समाज बिल्कुल विषमताकी दिशामें अग्रसर होने लगता है, तब मार्गदर्शकके रूपमें अलौकिक प्रतिभा एवं मानवोचित उदात्त सामाजिक गुणोंसे लोकसमाजपर नियन्त्रण स्थापित करनेमें समर्थ व्यक्तिको ही 'अवतार' कहा गया है।

भगवदवतारोंमें भगवान् श्रीरामचन्द्र सर्वाग्रणी हैं। आज भारतमें अन्य अवतार सम्भवतः कुछ विस्मृत अथवा लोगोंकी दृष्टिसे दूर हो गये हों, परंतु रामका अवतार तो प्रत्येक भारतीयके मानव-मानसमें ओतप्रोत हो चुका है। वह भारतकी उस भयंकर वेलामें हुआ था, जिसका वर्णन आदिकवि वाल्मीकि, व्यास तथा अन्यान्य मनीषियोंने अत्यधिक मात्रामें किया है; किंतु फिर भी वे नास्तिकोंको संतोष प्रदान नहीं कर सके। उस कालमें धर्म, अर्थ एवं कामके क्षेत्रमें सामाजिक अस्त-व्यस्तताको सुव्यवस्थित रूप प्रदान करनेका समस्त श्रेय 'रामावतार'को ही है। ये तीनों पुरुषार्थ उस कालमें निर्मर्याद हो चुके थे। शक्ति ही नियामक थी। भारतके सम्राट् चक्रवर्ती-पद-विभूषित दशरथ वृद्धावस्थामें भी यथा-कथञ्चित् राज्य-संचालन करते रहे। भारतके अधिकांश दक्षिण-प्रदेश तथा विहारके कुछ भूभाग लङ्काधिपति रावणके अधीन हो गये थे। दण्डकारण्य, नासिक आदिपर रावण अपने सैन्य-शिविर स्थापितकर भारतीय शासनको चुनौती दे रहा था। किष्किन्धाधिपति वाली संधिके द्वारा रावणसे सम्बद्ध था। इस विकराल राष्ट्रीय संकटमें, जब कि ब्राह्मण-वध, स्त्री-अपहरण तथा लूट-खसोट आदिकी घटनाएँ उग्र रूपमें नग्न-ताण्डव कर रही थीं, उस समय श्रीरामने सर्वप्रथम महर्षि विश्वामित्रके नेतृत्वमें अतिनिकट होनेके कारण उत्तर भागके भूभाग (बक्सर डिविजन आदि) को ताड़काका वध करके उन्मुक्त किया। ताड़का रावणकी स्थानीय प्रतिनिधि थी। महर्षि विश्वामित्रसे युद्धकी शिक्षा प्राप्त कर अपने पिता दशरथकी वृद्धावस्थाके कारण यौवराज्य-पदपर आसीन रहते हुए राम युवराजोचित अधिकारोंद्वारा प्राशासनिक स्थितिको प्रायः बारह वर्षतक सुव्यवस्थित करते रहे। यौवराज्य-कालमें उनके नैतिक एवं चारित्रिक बलका ही वह महान् प्रभाव था कि महाराज दशरथके जीवनमें ही जनता उनको राज्यासनपर अधिष्ठित देखना चाहती थी, परंतु यह सम्भव न हो सका। दशरथद्वारा दिये हुए आश्वासनमय वचनोंका महारानी कैकेयीने लाभ उठाना चाहा। गृह-युद्धकी आशङ्कासे आशङ्कित होकर श्रीरामने धार्मिक दृष्टिसे कामिक एवं आर्थिक समस्याओंका समाधान करते हुए "पितृ-आज्ञा ही सर्वोपरि है"—इस सर्वमान्य सिद्धान्तसे राज्य-तन्त्रका अस्तित्व सुरक्षित कर दिया। रामायणका यह स्थल तत्कालीन राज्यतन्त्रपर धर्मका स्पष्ट प्रभाव प्रदर्शित करता है। यह धर्म, नैतिकता, सहिष्णुता एवं वीरतापर आधारित था। भगवान् श्रीरामने राज्य-विहीन होकर भी वीरोचित स्वभावके कारण अपनी धर्मपत्नी (सीता) और अपने भाई (लक्ष्मण) के साथ दण्डकारण्यमें निवास कर अवशिष्ट राष्ट्रीय कार्य (दक्षिणी भूभागकी निर्मुक्ति) सम्पन्न किया।

श्रीरामने जनस्थानके निवासियोंसे जब यह प्रतिज्ञा की—'मैं यहाँसे राक्षसवंशका उन्मूलन कर दूँगा।' तब सीताने कहा—'राज्यसे तो आप निर्वासित हो ही गये हैं, फिर भी यहाँ वनमें आकर भी शान्तिसे रहना नहीं चाहते। राक्षसोंने आपका क्या बिगाड़ा है?' यह सुनकर भगवान् श्रीरामने उत्तर दिया—

> अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्।
> न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः॥

'सीते! मैं लक्ष्मणके सहित तुम्हें त्याग सकता हूँ, मृत्युका भी आलिङ्गन करनेको उद्यत हूँ, परंतु अपनी की हुई प्रतिज्ञा नहीं छोड़ सकता और वह प्रतिज्ञा जो ब्राह्मणोंसे कर चुका, उसे कदापि नहीं छोड़ सकता।'

इस स्थलपर श्रीरामचन्द्रजीकी वह दिव्य मर्यादा परिलक्षित होती है, जो वर्तमान कालके महापुरुषोंमें कथमपि नहीं पायी जा सकती। आज सर्वत्र विश्वमें जब कि भौतिक, वैज्ञानिक एवं आर्थिक सम्पन्नता दृष्टिगोचर हो रही है और सब वस्तुएँ सुलभ हो रही हैं, फिर भी केवल एक ही वस्तु दुर्लभ है, वह है—'दृढ़प्रतिज्ञता।'

श्रीरामका जीवन मानव-जीवनका मूल प्रेरणात्मक स्रोत है। वे मानवता, सभ्यता एवं आदर्श सुसभ्यतापूर्ण जीवनके प्रतीक हैं। रामताका लोप ही लौकिक मर्यादाका विनाश है।

मानवताका सबसे सुन्दर उदाहरण श्रीरामका वह व्यक्तित्व है, जिसे रावणकी मृत्युके पश्चात् महर्षि वाल्मीकिने

उपस्थित किया है। रावण मर चुका था। उस समय भगवान् राम ध्यानमग्न होकर सीताके सम्बन्धमें कुछ चिन्तन करने लगे। उन्होंने विभीषणको आज्ञा दी—'शीघ्र ही सीताको मेरे समक्ष उपस्थित करो।' विभीषणने सीताको लानेकी व्यवस्था की। श्रीरामके समक्ष उपस्थित करनेके लिये जब सीता शिविका (पालकी) पर लायी जा रही थीं, उस समय विभीषण भीड़को तितर-बितर करने लगे। तब रामने विभीषणसे कहा—"सीताके आनेके उद्देश्यसे लोगोंको हटाना-बढ़ाना मेरा अनादर करना है। सभी लोग मेरे आत्मीय हैं, इनके समक्ष आनेमें सीताको कोई दोष नहीं। स्त्रियोंके लिये गृह, वसु तथा अन्यान्य आवरण 'आवरण' नहीं, अपितु स्त्रियोंका चरित्र ही उनका खास 'आवरण' है। युद्धस्थल, स्वयंवर, यज्ञ, विवाह तथा विपत्काल आदिमें 'स्त्री-दर्शन' निन्द्य नहीं है। विशेषकर मेरे सांनिध्यमें तो कदापि अनुचित नहीं है। अतः सीताको पालकीपर न लाकर पैदल ही मेरे सामने लाओ, जिसमें सभी लोग उसे देखें।" विभीषणने वैसा ही किया और सीताको पैदल चलकर ही रामके सम्मुख आना पड़ा। यह सामाजिक जीवन एवं राजनीतिक संघटनशक्तिकी परिचायक कैसी सुन्दर अभिव्यक्ति है।

अपने पार्श्वमें स्थित राक्षस-गृहसे आयी हुई लज्जासे अवनतमुखी सीताको देखकर भगवान् रामके मनमें रोष, हर्ष और दैन्यके भाव उत्पन्न होने लगे। अन्तमें उन्होंने सीताके समक्ष अपना हार्दिक भाव जिन शब्दोंमें प्रकट किया, उनसे प्रजापालक मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके आदर्श चरित्रका परिचय प्राप्त होता है। यह रामकी उच्च लोक-मर्यादा है। राजाका अनुसरण ही प्रजा करती है। यदि रामने अपने जीवनमें किसी प्रकार भी अमर्यादाको प्रश्रय दिया होता, तो वे 'मर्यादा-पुरुषोत्तम' न कहे जाते।

अन्ततः अग्निप्रवेशद्वारा शुद्ध सीताको देवगणसे प्रबोधित होकर श्रीरामने ग्रहण किया, परंतु अयोध्या पहुँचनेपर मूर्ख नागरिकोंकी भ्रान्तिको दूर करनेके लिये भगवान् रामने, व्यक्तिगत स्वामीके रूपमें अत्यन्त मर्माहत होते हुए भी, राजाके कर्तव्य-पालनके उद्देश्यसे गर्भिणी सीताको पुनः निर्वासित कर ही दिया।

महाकवि भवभूतिने 'उत्तर-रामचरित'में भगवान् रामका चरित्र चित्रित करते हुए बड़ा ही स्पष्ट सुन्दर निर्देश किया है—

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति॥

अर्थात् 'लोकोत्तर महापुरुषोंका मन वज्रसे भी कठोर और पुष्पसे भी कोमल हुआ करता है, जो कि साधारण जनोंके लिये दुरवबोध ही है।'

इस प्रकार राजतन्त्रका प्रजानुरञ्जनके लिये प्रयोग श्रीरामके ही दृढ़ मनके वशकी वस्तु हो सकती थी। जनतामें वैर-भावकी वृद्धि रोकने तथा असहिष्णुताको शान्त करनेके लिये उन्हीं मर्यादा-पुरुषोत्तम रामने राजतन्त्रका मौलिक विवेचन करते हुए राजनीतिक समन्वय स्थापित करनेमें भी अपूर्व सफलता प्राप्त की थी।

श्रीरामने वन-निर्गमनके समय लक्ष्मणसे कहा था—

एतदर्थं हि राज्यानि प्रशासन्ति नराधिपाः।
यदेषां सर्वकृत्येषु मनो न प्रतिहन्यते॥

अर्थात् 'राजालोग इसीलिये राज्यका शासन सँभालते हैं कि किसी भी काममें उनका मनोविघात न हो।' निरङ्कुशता ही राजाओंका चरित्र होती है। अतः पिताजी जो कुछ चाहते हैं, उन्हें कर लेने दो।

इस समय यदि राम कौसल्याके अनुमोदनपूर्वक कहे गये* लक्ष्मणके परामर्शको मानते, तो अधिक सम्भव था कि राज्यक्रान्ति हो जाती; क्योंकि जनता भी उनके साथ थी, परंतु श्रीरामने अपनी हार्दिक क्रान्ति-भावनाको एक दूसरा ही मोड़ दिया और उन्होंने राज्यतन्त्रको प्रजातन्त्रके रूपमें परिणत किया। यह कार्य क्रमशः होकर उनके जीवनके पश्चिमांशमें ही सुस्पष्ट होता है, जब कि उन्होंने अपने पुत्रों तथा भ्रातृपुत्रोंमें राज्यका सम-विभाजन कर दिया था। इस प्रकार 'त्रेतायुग'में भी सर्वप्रथम प्रजातन्त्रके आदि-संस्थापक मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामको ही कहना चाहिये।

जिस समय जंगलमें भरत श्रीरामको मनानेके लिये आ रहे थे, उस समय लक्ष्मणने दूरसे ही भरत और भरतकी सेनाको आते देखकर संदेह किया कि कहीं हमलोगोंको बिल्कुल निर्मूल करनेके लिये ही तो भरत सेना लेकर नहीं आ रहे हैं। लक्ष्मण युद्धके लिये तत्पर होने लगे, परंतु

* गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथं प्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम्॥ इत्यादि
(वा० रा० अयोध्या०)

श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—'भरतसे मैं कह दूँगा कि तुम अपना राज्य लक्ष्मणको ही दे दो।' भगवान् श्रीरामके वाक्यको सुनकर लक्ष्मण लज्जित होकर चुप हो गये। यह भ्रातृप्रेमका अनूठा उदाहरण तो है ही, साथ ही आत्म-निर्भरताकी भी पराकाष्ठा है।

भगवान् श्रीरामके लौकिक गुणोंसे सारा भारतीय वाङ्मय सुशोभित है। भगवान् रामका वास्तविक ज्ञान कराना ही वाल्मीकीय रामायणका प्रधान उद्देश्य है।

'रामादिवत् प्रवर्तितव्यं न रावणादिवत्' की विशिष्ट शिक्षा रामावतारसे ही जगत्को प्राप्त होती है।

अग्निपुराण अथवा भारतीय ज्ञानकोश ?

(लेखक—डॉ० सुरेशव्रत राय, एम्०ए०, डी० फिल्०, एल्-एल्० बी०)

पुराण भारतीय संस्कृति एवं सामान्य जनजीवनके मेरुदण्ड हैं। विद्वानोंका मत है कि वेदोंकी भाषा, व्याख्या, सिद्धान्त सर्वसाधारणके लिये जटिल एवं अगम्य होनेके कारण वेदविहित धर्म एवं सिद्धान्तोंका सरल एवं सुबोध भाषामें वर्णन करनेकी दृष्टिसे पुराणोंकी रचना वैदिक कालसे ही लगभग ६०० वर्ष ई० पू० से ही आरम्भ हुई और यह क्रम गुप्तकालके बादतक चलता रहा। अर्वाचीनताके कारण इस प्रकारके साहित्यको 'पुराण'की संज्ञा दी गयी। वेद-उपनिषद्के कतिपय मन्त्रोंमें पुराणोंकी चर्चा मिलती है—

ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्॥

(छान्दोग्य० ७।१।२)

अथर्ववेदमें पुराणोंकी पञ्चम वेदके रूपमें व्याख्या नहीं की गयी; परंतु प्रकारान्तरसे पुराणोंकी चर्चा अवश्य हुई है—

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः॥

(अथर्व० ११।७।२४)

मत्स्य, विष्णु तथा ब्रह्म अथवा ब्रह्माण्डपुराणोंमें पुराणोंके पाँच लक्षण गिनाये गये हैं। सर्ग अथवा सृष्टि, प्रतिसर्ग अर्थात् सृष्टि-विस्तार, लय और पुनःसृजन, सृष्टिकी वंशावली, क्रमानुसार घटनाओंका विवेचन तथा वंशानुचरित। अतः पुराणोंमें जहाँ राजाओं, ऋषियोंके जीवनका वृत्तात्मक ऐतिहासिक परिचय मिलता है, वहाँ विस्तृत भौगोलिक वर्णनोंका समावेश हुआ है, जैसे स्कन्दपुराणका काशीखण्ड। पुराणोंकी भाषा व्यावहारिक होनेके कारण पाणिनिके व्याकरणकी अथवा अन्य जटिल लक्षणरेखामें बन्दिनी न होकर सरल, सुबोध और हृदय-ग्राहिणी है। पुराणशैली, इतिहासकी तथ्यात्मक वर्णन-प्रधान शैलीकी अपेक्षा आलङ्कारिक, अतिशयोक्तिपूर्ण और कहीं-कहीं काल्पनिक भी है। इस शैलीमें धर्मशास्त्र, नीतिविषयक सदुपदेश पुराणोंमें मिलते हैं, जिनके कारण कौटिल्यने अपने 'अर्थशास्त्र'में राजाके द्वारा पुराणश्रवण-की संस्तुति की। सुमन्त्रकी नीतिकुशलताके संदर्भमें वाल्मीकिने 'रामायण'में उनका पुराणवेत्ता कहकर चित्रण किया है। कुमारिलने पुराणचर्चा की, शंकरने पुराणोंका उल्लेख किया और याज्ञवल्क्यने 'स्मृतिग्रन्थ'में चौदह विद्याओंके साथ पुराणोंकी भी गणना की है।

पुराणोंकी संख्या १८ की भी अपने ढंगसे व्याख्या की गयी है। कहते हैं अठारह पुराण आत्माके अठारह प्रतिपादक रूपों (४ क्षेत्रज्ञ, ५ अन्तरात्मा तथा ९ भूतात्मा-योग १८) के परिचायक हैं। संयोग है, महाभारतमें १८ पर्व हैं तो गीताके १८ अध्याय और इसी प्रकार श्रीमद्भागवतमें १८,००० श्लोक माने जाते हैं। इसीके अनुरूप पुराणोंकी संख्या भी १८ मानी जाती है। मत्स्य, मार्कण्डेय, भविष्य, भागवत, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, ब्राह्म, वामन, वराह, विष्णु, वायु, अग्नि, नारद, पद्म, लिङ्ग, गरुड, कूर्म तथा स्कन्द। इनके सहायक १८ उपपुराण भी माने गये हैं।

विषयगत विविधता एवं जीवनोपयोगिताकी दृष्टिसे १८ पुराणोंमें अग्निपुराण सबसे अलग एवं सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। अनेकानेक विद्याओंका समावेश होनेके कारण 'अग्निपुराण'के लिये कहा गया—'आग्नेये हि पुराणेऽस्मिन् सर्वा विद्याः प्रदर्शिताः।' इसका कारण हो सकता है कि अनेक शताब्दियोंमें प्राचीन ग्रन्थोंसे सार संगृहीत करके अग्निपुराणकी रचना हुई है। इसे वह्निपुराणकी संज्ञा भी दी जाती है। कुछ

विद्वानोंके मतानुसार 'अग्निपुराण' का लक्ष्य अग्निकी महिमाका प्रतिपादन है तथा तान्त्रिक अनुष्ठानसम्बन्धी अंशोंके आधारपर इसका उद्भव बंगदेशमें माना जाता है। कहते हैं कि इस पुराणके वक्ता थे अग्निदेव और लिपिबद्ध किया व्यास नामक किसी विद्वान्ने। वैसे इसकी प्रतियाँ प्रायः अनुपलब्ध हैं। आनन्दाश्रम, पूनाद्वारा वी० आई० सीरीजके अन्तर्गत, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बईसे प्रकाशित संस्करणकी कुछ ही प्रतियाँ केवल बड़े-बड़े स्थानोंके शीर्षस्थ पुस्तकालयोंमें उपलब्ध हैं। गुरुमण्डल ग्रन्थमालाके अन्तर्गत सन् १९५७ ई० में कलकत्तासे अग्निपुराण प्रकाशित हुआ। श्री एम० एन० दत्तद्वारा अग्निपुराणका अनुवाद भी सम्पन्न हुआ। उन्होंने अग्निपुराणको विष्णुपुराणकी भूमिकाके रूपमें स्वीकार किया, जिसका संकलन विविध कालोंमें होता रहा। मैकडानेलने 'हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर' में (पृष्ठ ३००) इसे महाभारत और हरिवंशपुराणपर आधारित बतलाया है तो एफ० ई० पार्टिसर 'ऐन्शिएन्ट हिस्टारिकल ट्रैडीशन' (पृष्ठ ८०) में अग्निपुराणको मत्स्यपुराणकी परम्पराका अनुकरण मानते हैं। विंटर नित्सने 'द हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर' में लोकशिक्षणके लिये उपयोगी विद्याओंका संग्रह प्रस्तुत करनेवाले इस ग्रन्थका एक विश्वकोशके रूपमें वर्णन किया है, जिसमें भारतीय वाङ्मयके प्रत्येक विषयका समावेश है। कुछ विद्वान् इस ग्रन्थको ११ शतीसे अधिक प्राचीन मानते हैं। अर्थात् भोजराजके समकालीन, ११वीं शताब्दीके अन्तमें अथवा ११वीं शताब्दीके प्रारम्भमें। अग्निपुराणके आकारके सम्बन्धमें भी सहमति नहीं मिलती। भागवतके अनुसार १५,४००, देवीभागवत पुराणके अनुसार १६,००० तथा मत्स्यपुराणमें इसकी श्लोक-संख्या १६,००० बतायी जाती है। यद्यपि अग्निपुराणमें १२,००० श्लोकोंका ही उल्लेख मिलता है। यह ग्रन्थ ३८३ अध्यायोंमें समाप्त हुआ है। यह रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत, मत्स्य, कूर्मावतारकी कथाओंपर आधारित है।

अग्निपुराणकी सर्वतोमुखी व्याप्तिका परिचय विस्तृत विषयानुक्रमणिकासे ही मिल सकता है, जिसमें धार्मिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक, कर्मकाण्ड, लोकोपयोगी तथा काव्यशास्त्राङ्गका समावेश हुआ है। इनका क्रमानुसार विवरण निम्न प्रकार है—

अध्याय १ से २२ में मङ्गलाचरण, मत्स्य, कूर्मावतार, राम, कृष्ण, महाभारत-आख्यान, बुद्धकालकी कहानी, सृष्टि-उत्पत्ति, स्वायम्भुव, मनु, काश्यपवंश-वर्णन। अध्याय २३—३३ कर्मकाण्डविधियोंकी चर्चा, ३४ से १०२ में अनेकानेक विषयों—जैसे वास्तुकला, निर्माणकला, मूर्तिकला, भवनशिल्प-विज्ञान, वशीकरण विद्या तथा अन्य विविध विषयोंका उल्लेख मिलता है, जिनका अन्य अध्यायोंमें भी कहीं-कहीं उल्लेख मिलता है। अध्याय १०३—११६में पर्वतों, गङ्गा, काशी आदिका माहात्म्य-वर्णन; अध्याय ११७में श्राद्धवर्णन; ११८–१२१में भारतवर्णन तथा ज्योतिष; १२२–१२४में युद्धविद्या; १२५–१४९में तान्त्रिक उपासनापद्धति-वर्णन, १५०–१५४में वर्णधर्मचर्चा–विवाह-संस्कार; १५५—२०१में आचार-शुभाशुभचर्चा; पाप, प्रायश्चित्त; २०२–२०७में नरकवर्णन; २०८–२१२में दानमहिमा; २१३–२४८में विभिन्न पूजाविधि, राजधर्म, दण्डनीति, यात्राशकुन; २४९—२५४में धनुर्वेद; २५५में दायविभाग; २५६—२७२में कर्मकाण्डकी विविध विधियाँ; २७३–२७५में विविध राजवंश; २७६—२९६में आयुर्वेद; २९७—३३७में विविध विधि-विधान; ३३८—३४७में काव्य-शास्त्राङ्ग; ३४८—३६७ व्याकरण तथा कोश; ३६८—३८३में योगचर्चा, ब्रह्मज्ञान, गीताका सारांश।

इन अध्यायोंमें विषयोंकी विस्तृत चर्चा की गयी है। आयुर्वेदप्रकरणमें मानवीय चिकित्सापद्धतिके अतिरिक्त अश्वायुर्वेद, गजायुर्वेद, गोचिकित्सा तथा वृक्षायुर्वेदका धन्वन्तरिद्वारा विश्वामित्रपुत्र सुश्रुतको दिये गये आयुर्वेदोपदेशके रूपमें वर्णन किया गया है। गौ, घोड़े, हाथी तथा अन्य जो भी पशु मनुष्यके काम आते हैं, उनकी चिकित्सा-पद्धतियोंका समावेश किया गया है। कृषिप्रधान देशमें पेड़-पौधोंके रोगोंकी निदान-चर्चाके अभावमें ग्रन्थ अधूरा होता, अतः वृक्षायुर्वेदमें वृक्षों, लताओं, गुल्मोंके रोगों एवं उनके निदानका उल्लेख है। युद्धकलाके अन्तर्गत कूटनीति, युद्धनीति, गुप्तचर, सैन्य-संगठन, व्यूहरचना, धनुर्विद्या, रथसंचालन, गजनियन्त्रण आदि विद्याओंका वर्णन किया गया है, जिसके वक्ता हैं ब्रह्मा, प्रजापति, इन्द्र, मनु, जमदग्नि। सामुद्रिकशास्त्रके अन्तर्गत स्त्री-पुरुषके शुभाशुभ लक्षणों, शकुनोंका विवेचन है। मणियोंके संदर्भमें वज्र, मुक्ताफल, पद्मराग, मरकत, इन्द्रनील, पुष्पराग, कर्केतन, पुलक, स्फटिक, विद्रुम आदि रत्नों, उनकी परीक्षाके साधनोंका वर्णन किया गया है। वास्तुकलाके अन्तर्गत वास्तु-कला-सम्बन्धी मूल सिद्धान्त, स्थान-चुनाव, निर्माण-रूपरेखा, राजप्रासाद-निर्माणकला, देवोंका मूर्तिनिर्माण, मूर्तियोंकी

प्राणप्रतिष्ठा-पद्धति, मन्दिरों, राजप्रासादों, भवनोंकी रचना, गर्भगृह, कलशनिर्माण-कला और सिद्धान्तोंका उल्लेख किया गया है। काव्याङ्गमें काव्यादि लक्षण, नाटक-निरूपण (नाटकके भेद-प्रकार), नायक-नायिका-भेद, रस-विवेचन, नृत्यकला, आङ्गिक चेष्टाएँ, हाव-भावोंकी परिगणना, शृङ्गारादि रसोंके लक्षण, अनुप्रास, यमक आदि शब्दालङ्कार, आठ अर्थालङ्कार, काव्यगुण एवं दोष-विवेचन—इन विविध विषयोंकी गणनामात्र करनेकी अपेक्षा इनका विस्तृत विवेचन किया गया है। अन्तमें सारी विद्याओं और कलाओंकी चरम परिणति ब्रह्मज्ञानके रूपमें धर्म, अर्थ और कामके सोपानके उपरान्त होती है। इस दृष्टिसे अग्निपुराण केवल आलङ्कारिक कथाशैलीमें धर्मचर्चातक सीमित रहनेकी अपेक्षा जीवनके समस्त पक्षोंका प्रतिनिधित्व करनेवाला विशाल ग्रन्थ है; जो लौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकारकी सिद्धिमें मार्गदर्शन करनेवाला प्रकाशस्तम्भ है। ऐतिहासिक दृष्टिसे अग्निपुराणके विस्तृत विवेचन १०वीं-११वीं शताब्दीमें विभिन्न कलाओं और सामाजिक जीवनके चरमोत्कर्षके परिचायक हैं। उक्त दृष्टिकोणोंसे अग्निपुराणको भारतीय ज्ञानकोश एवं श्रेष्ठतम पुराण कहा जा सकता है।

पुराणकी प्राचीनता एवं अग्निपुराणके विषय

(लेखक—पं० श्रीदीनानाथजी शास्त्री सारस्वत, विद्यावागीश, विद्यावाचस्पति)

वेद एवं पुराण अनादि हैं, परम्परासे चले आते हैं; अतएव वेदोंमें पुराणोंका तथा पुराणोंमें वेदोंका नाम आता है। संसारभरका कोई प्राचीनसे भी प्राचीन साहित्य ले लीजिये, उसमें आपको पुराणोंका नाम मिलेगा। जो कि पुराणोंको श्रीवेदव्यासकृत कहा जाता है; वहाँ 'कृ' धातुका अर्थ 'प्रकथन' होनेसे निर्माण अर्थ नहीं, किंतु श्रीवेदव्याससे 'प्रोक्त' अर्थ है। 'वेदव्यास' यह नाम भी वेदोंका व्यास करनेसे कहा जाता है, पर इससे वेद व्यासकृत नहीं हो जाते हैं, किंतु वेदव्याससे प्रोक्त ही हैं। इस प्रकार पुराणोंके विषयमें भी याद रख लेना चाहिये। 'वेदव्यास' भी यह 'नाम' नहीं है, यह उपाधि है। प्रति द्वापरमें श्रीव्यास वेद एवं पुराणका परिष्करण करते हैं। इतना अन्तर है कि वेदकी योजना अपौरुषेय है और पुराणोंकी पौरुषेय।

पुराण 'अर्थ' है और वेद 'शब्द'। शब्द और अर्थ एक-दूसरेपर आश्रित होते हैं। इनमें 'पौर्वापर्य' (यह पूर्व (पहले) का है, यह अपर (पीछे) का है—) यह नहीं कहा जा सकता। हाँ, पुरुषद्वारा 'अर्थ' का पहले हृदयमें स्मरण करके फिर पीछे 'शब्द' का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार पुराणमें भी कहा जाता है—

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥
(शिव० वायु० ५। १। ११। ३२)

'ब्रह्माजीने सब शास्त्रोंमें पुराणोंका सर्वप्रथम स्मरण किया। फिर उनके मुखसे वेद प्रकट हुए।' केवल यही एक वचन पुराणोंका नहीं है कि इसमें कुछ संदिग्धता हो; किंतु यह वचन बहुत-से पुराणोंमें है। अतः इसकी प्रमाणता निश्चित है।

कई अर्वाचीन लोग पुराणोंको अर्वाचीन मानते हैं, पर आर्यसमाजके अन्वेषकशिरोमणि (रिसर्च स्कालर) श्रीभगवद्दत्तजीने यह न मानकर उन्हें अतिप्राचीन माना है; हम उनके कुछ उद्धरण उनके 'भारतवर्षका बृहत् इतिहास' के प्रथम भागसे संकलित करते हैं।

उक्त बृहत् इतिहासके १७वें पृष्ठमें वे लिखते हैं—'भारतीय वाङ्मयसे पता चलता है कि इतिहास-शास्त्रके समान पुराणशास्त्र भी प्राचीनतम कालसे चला आता है। अथर्ववेदमें विद्यावाची 'पुराण' शब्द पठित है। महाभारतमें पुराणविदोंका स्मरण किया गया है। वायुपुराणमें 'पुराण' शब्दका निम्नलिखित निर्वचन किया गया है—'यस्मात् पुरामनन्तीदं पुराणं तेन चोच्यते।' (१। २०३ तथा १०३। ५५) यह निर्वचन यास्कीय-निर्वचनसे भिन्न है। प्रतीत होता है कि यह बहुत पुराना निर्वचन है। पुराणपञ्चावयवी-लक्षण बहुत प्रसिद्ध है।

महत्त्व—इतिहास आत्मा है और पुराण उसका शरीर है। इस पुराण-शरीरके बिना इतिहासका स्मरण नहीं रह

सकता। पुराण इतिहासकी सूची है। यदि हमारे पास 'वायु' आदि पुराण न होते, तो हम इतिहासको लिख न सकते।

इतिहासको सुरक्षित रखनेवाली [पुराण-] ऐसी बहुमूल्य देन संसारमात्रके वाङ्मयमें अन्यत्र नहीं है। ....संसार पुराणका महत्त्व शनैः-शनैः समझेगा। बृहस्पति आदिने इतिहास-पुराणका शास्त्र साक्षात् ब्रह्माजीसे सीखा था। भगवान् ब्रह्माके उपदेशसे पृथु-वैन्यके करतलसे इतिहास और पुराणविद्या चल पड़ी थी। (५। १९)

ये हैं—अनुसंधाताजीके शब्द। उक्त 'भारतवर्षका बृहत् इतिहास' के ९५ पृष्ठसे 'पुराणसाहित्यकी प्राचीनता' इस शीर्षकसे वे लिखते हैं—

१. नवम शताब्दीका मनुस्मृति-भाष्यकार भट्ट मेधातिथि लिखता है—'पुराणानि व्यासादिप्रणीतानि।' (मनु० ३। २२२)

२. सं० ६८७ के समीप ऋग्भाष्य करनेवाला आचार्य स्कन्दस्वामी पुराणोंके कई श्लोक प्रमाणरूपमें लिखता है—(१। २०। ७, १, २४। १, १। २५। १३)।

३. पाणिनिकालिक 'कक्षीवन्तमाङ्गिरसे।' (१। ११६। ७) ये श्लोक वर्तमान पुराणोंके स्वल्प पाठान्तरसे मिलते हैं।

४. आचार्य दुर्ग वसिष्ठोत्पत्ति-सम्बन्धी एक कथाका भाव लेकर लिखता है—'इति पुराणेषु श्रूयते।' (निरु० ५। ३४) यह कथा भविष्य २०। २३—२९ में मिलती है।

५. विक्रमकी पहली शताब्दीमें होनेवाला आचार्य वररुचि अपने 'निरुक्तसमुच्चय' में लिखता है—'तथा चातुः पौराणिकाः।'—(द्वितीय कल्पका आरम्भ)

६. ब्राह्मणसम्राट् शूद्रक अपने पद्मप्राकृतकभाणमें लिखता है—'भो अधो पुराणकाव्यपदच्छेद०' (चतुर्भाणी ५। ५)

७. न्यायभाष्यकार वात्स्यायन किसी पुरातन ग्रन्थका यह वाक्य लिखता है—'प्रमाणेन खलु ब्राह्मणेन इतिहासपुराणस्य प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते—ते वा खलु एते अथर्वाङ्गिरस एतद् इतिहासपुराणमभ्यवदन्—इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेद इति।' (४। १। ६२) यहाँ इतिहास-पुराणग्रन्थोंका उद्धरण है।...... जिस प्रकार अनेक ब्राह्मण-ग्रन्थ, व्याकरण-ग्रन्थ और धर्मशास्त्र आदि प्रोक्त हैं, उसी प्रकार अनेक पुराण-इतिहासग्रन्थ भी प्रोक्त हैं।

८. (पृ० ९६) वात्स्यायनके अनुसार इतिहास और पुराणके लेखक ही मन्त्र-ब्राह्मणके द्रष्टा थे—'य एव मन्त्रब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च, [प्रवक्तारः—] ते खलु इतिहासपुराणस्य धर्मशास्त्रस्य चेति।'

(पृ० ९८) पतञ्जलि अपने व्याकरण महाभाष्यमें पुरातन वाङ्मयका परिगणन करता हुआ पुराणका स्मरण करता है—'वाकोवाक्यमितिहासः पुराणं वैद्यकमिति।' (पस्पशा०)

९. कौटल्य भी किन्हीं पुराणोंको जानता था—'इतिहास-पुराणाभ्यां बोधयेदर्थं शास्त्रवित्।' (९६ अध्यायके अन्तमें)

१०. स्कन्द, शूद्रक, वात्स्यायन, पतञ्जलि और कौटल्यके कालसे बहुत पहले याज्ञवल्क्यस्मृतिके कर्ताको पुराणसाहित्यका ज्ञान था।' (याज्ञ० स्मृ० १। ६। ३। १८०)

१२. गौतम-धर्मसूत्र-भाष्यकार मस्करी (१। ३९) सूत्रके भाष्यमें धर्मसूत्रका एक वचन लिखता है—'अथर्ववेदेतिहास-पुराणानि ध्यायन्।' (अथर्ववेदका इतिहास-पुराणके बाद उल्लेख प्रायः मिलता है।)

१३. गौतमधर्मसूत्र (८। ६) में 'वाकोवाक्यइतिहास-पुराणकुशलः।' और ११। २१ में 'पुराण-शब्द'का प्रयोग मिलता है। 'आपस्तम्बधर्मसूत्र (१। ६। १९, ३। १)में किसी पुराणके दो श्लोक उद्धृत किये गये हैं। २। ९। २४। ६ में भविष्यपुराणका एक वचन उद्धृत है।

१५. भगवान् बुद्धसे बहुत पहलेकी चरकसंहिताके सूत्रस्थान (१५। ७), शारीरस्थान (४। ४४) में लिखा है—'श्लोकाख्यायिकेतिहासपुराणेषु कथितम्।' इस वाक्यसे प्रतीत होता है कि उस अत्यन्त प्राचीन कालमें भी अनेक पुराण थे।

१७. महाभारत, भीष्मपर्व (६१। ३६)में 'पुराणगीतम्' पाठ है।

१८. धर्मशास्त्रोंके पूर्ववर्ती आरण्यकों और ब्राह्मणोंमें भी पुराणोंका उल्लेख है—'ब्राह्मणानीतिहासान्, पुराणानि, कल्पान्, गाथा नाराशंसीः।' (तै० आ० २। ९) 'किञ्चित् पुराणमाचक्षीत।' (शत० १३। ४। ३। १३) 'इतिहास-पुराणं गाथा।' (शत० ११। ५। ६। ८)

१९. भगवान् पराशर अपनी ज्योतिषकी 'बृहत्संहिता' में लिखते हैं—'वेद-वेदाङ्गेतिहासपुराणधर्मशास्त्रावदातम्।' (भट्ट उत्पलकी टीका पृ० ८१)

२०. वाल्मीकिरामायण, बालकाण्डमें ग्रन्थवाची 'पुराण'

शब्द पाया गया है—'नरेन्द्र ! श्रूयतां तावत् पुराणे यन्मया श्रुतम् ।' (८ । ५) सनत्कुमारो भगवान् पुरा कारितवान् कथाम् । भविष्ये विदुषां मध्ये तव पुत्रसमुद्भवम् ॥' (६) किष्किन्धाकाण्ड (६२ । ३) में भी 'पुराण' का स्मरण किया गया है ।

२१. छान्दोग्योपनिषद् (७ । १ । १) के अनुसार भगवान् सनत्कुमारके पास जानेवाला नारदमुनि इतिहास-पुराणको जानता था । इसीलिये उसकी स्मृतिमें २०४-२०५ श्लोक पुराण-प्रोक्त हैं ।

२२. अथर्ववेद (१५ । ३० । १) में अनेक विद्याओंके साथ 'पुराण' शब्द भी पढ़ा है । 'तमितिहासश्च पुराणं च ।'

यवन मेगास्थनीज़ पुराणोंसे परिचित थे; अतः सिद्ध है कि विक्रम-संवत्से कई सौ वर्ष पुराणोंके अनेक सिद्धान्त सर्वसाधारणमें बहुत मान्यता रखते थे ।

उन्हीं अनुसंधाताजीने अपने वृहद् इतिहासके १०० पृष्ठमें अठारह पुराणोंके विषयमें बताया है—

१. प्रसिद्ध ऐतिहासिक अलबेरूनी (सं० १०८७) १८ पुराणोंकी स्वल्प भेदवाली दो सूचियाँ देता है ।

२. राजशेखर (सं० ९५७) 'काव्यमीमांसा' २ अध्यायमें अष्टादश पुराणोंका कथन करता है—'तत्र वेदाख्यानोपनिबन्धनप्रायं पुराणमष्टादशधा' । 'बालभारत'में भी—'अष्टादशपुराणं संग्रहसंग्रहकारिन् ।' (पृ० ४४) ।

३. तैत्तिरीय-आरण्यक (२ । ९) के भाष्यमें भट्टभास्कर 'इतिहासपुराणानि' के अर्थमें 'इतिहासा महाभारतादयः; पुराणानि ब्रह्माण्डादीनि ।' लिखता है ।

४. मेधातिथि मनु० (३ । २३२) के भाष्यमें 'पुराणानि व्यासादिप्रणीतानि ।' लिखता है ।

५. गौतमधर्मसूत्र (८ । ६) के भाष्यमें मस्करी लिखता है—'पुराणं ब्रह्माण्डादि ।'

६. वाचस्पतिमिश्र (सं० ८९८) योगभाष्यकी व्याख्यामें प्रायः विष्णुपुराणका नाम लेकर (२ । ३२, ५२ । ५४) उसके प्रमाण देता है । वह १ । १९, २५, ४ । १३ में वायुपुराणका भी नाम स्मरण करता है । उससे उद्धृत इन पुराणोंके श्लोक मुद्रित संस्करणोंमें अब भी मिलते हैं ।

७. वाचस्पतिसे पूर्ववर्ती आचार्य शंकर कई पुराणोंके नाम लेकर उनसे प्रमाण देते हैं । यथा—'भविष्योत्तरपुराण' (विष्णुसहस्रनाम) टीका (१० श्लो०), विष्णुपुराण (श्लो० १०), ब्रह्मपुराण (श्लो० १०) और पद्मपुराण (श्लो० ५६) ।

८. सं० ६७७ के समीप हर्षचरितमें भट्टबाणने लिखा है—'पवनप्रोक्तं पुराणं यथा ।' (तृतीयोच्छ्वासारम्भ) वही अपनी कादम्बरीमें लिखता है—'पुराणे वायुप्रलपितम् ।' (पृ० २१) ।

९. बाणसे पहले होनेवाला आचार्य भट्टकुमारिल पुराणोंके भविष्य कथनोंको प्रामाणिक मानता था । उसके कालमें पुराणोंमें भविष्य कथन ऐसा ही था, जैसा सम्प्रति मिलता है । तन्त्रवार्तिक (१ । ३ । १) के पुराण-प्रामाण्यसे यह स्पष्ट है ।

१०. सांख्यकारिकाकी माठरवृत्ति सम्भवतः प्रथम शताब्दी (विक्रम) में पुराणवर्णित भविष्यके 'कल्की' का उल्लेख है ।

११. बाण हर्षचरितमें पुरूरवाके मरनेकी कथा लिखता है, सुबन्धु वासवदत्तामें, अश्वघोष बुद्धचरितमें (११ । १५), कौटल्य (१ । ६) में इस घटनाका संकेत करता है । पुरूरवाकी कथा वायुपुराण (३ । २०—२३) में मिलती है । अन्यत्र हमारे देखनेमें नहीं आयी । इससे ज्ञात होता है कि कौटल्यको वायुपुराणका अथवा वायुपुराणस्थ इन श्लोकोंका ज्ञान था ।

(ख) महाभारत, वनपर्व (१८९ । १४) में वायुप्रोक्त पुराणका उल्लेख है । वायुपुराणमें प्राचीन पुराण-सामग्री बहुत सुरक्षित है । हरिवंश (१ । ७ । २५) में वायु-पुराणका स्मरण किया गया है ।

(ग) मनुस्मृतिमें आर्षगाथा, वायुगीता (९ । ४२) लिखा है । वायुपुराण लोमहर्षणद्वारा सुनाया गया था ।

सुप्रसिद्ध कवि कालिदासके 'विक्रमोर्वशीय'में लक्ष्मीस्वयंवर नाटकका उल्लेख मत्स्यपुराणके २४ अध्यायके २७-२८ श्लोकोंपर आश्रित है । अतः मत्स्यकी बहुत-सी सामग्री पर्याप्त पुरानी है । इस प्रकार विज्ञ पाठक समझ सकते हैं कि पुराण-साहित्य चिरकालसे प्रचलित रहा है । आधुनिक पुराणोंमेंसे भी कई एक बहुत पुराने हैं । इनकी सामग्रीके एक विशेष अंशका कृष्णद्वैपायन व्याससे सम्बन्ध

है। महाभारत बननेसे पहले भी तो पुराण था (आदिपर्व ५६ । ३७—५०; वायु० १ । ३१-३२)। उस पुराणसे महाभारतके पूर्वकालकी कई वंशावलियाँ भी महाभारतमें ली गयी हैं।

पृ० १०४ परंतु वर्तमान पुराणोंके साम्प्रदायिक भाग बहुत पुराने नहीं हैं। हाँ, उनकी महाभारतकालसे पूर्वकालकी ऐतिहासिक सामग्री है, हेर-फेरसे रहित है। महाभारतोत्तर कालकी ऐतिहासिक सामग्री भी जितनी पुराणोंमें सुरक्षित है, उतनी अन्य किसी ग्रन्थमें सुरक्षित नहीं। भारतका इतिहास लिखनेवालोंको पुराणोंकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिये।

पृ० १०५ पुराणोंके भूवृत्तके विषयमें कलकत्ताके अध्यापक प्रबोधचन्द्र बागचीने लिखा है—'पुराणोंके कुछ विचार वास्तविक हैं; अतः काल्पनिक कहकर उन्हें परे नहीं फेंकना चाहिये।'

यह हमने 'कल्याण'-पाठकोंके समक्ष एक रिसर्च स्कालरके भाव रक्खे हैं, जिनमें उनका पर्याप्त परिश्रम प्रत्यक्ष है। वस्तुतः पुराण तो वेदोंके समकालीन हैं; इस विषयमें श्रीसनातनधर्मालोक ग्रन्थमालाके सप्तम पुष्पमें *देखना चाहिये। पुराणोंमें होनेवाली सभी शङ्काओंके समाधानके लिये 'आलोक'के सप्तम, नवम तथा दशम पुष्प पढ़ने चाहिये।

मुख्य विषय-सूची

अब अग्निपुराणके विषयमें कुछ अन्य भी समझ लेना चाहिये। पुराणोंमें केवल मोक्ष ही नहीं होता, किंतु धर्म, अर्थ और काम भी हुआ करते हैं। पुरुष इनसे वृत्ति भी प्राप्त कर सकता है। अग्निपुराणको 'विश्वकोष' माना जाता है; क्योंकि इसमें सभी प्रकारके विषय मिल जाते हैं। हम इसकी अध्यायानुसार मुख्य विषयोंकी सूची भी देते हैं—'कल्याण'-पाठक उसे देखें—

अग्निपुराणके २ से १६ अध्यायोंतक अवतारोंका वर्णन है। फिर १७ से २० तक सृष्टि-निरूपण है। आगे २१ से ३१ तक स्नान, संध्या, होम आदिका वर्णन है। ३२वें अध्यायमें अड़तालीस संस्कारोंका वर्णन है। ४१-४२ में शिल्पविन्यासविधि और प्रासाद (महल) का लक्षण बताया गया है। ४४—५५में देवप्रतिमाओंके लक्षण। ६० से ६६ तक विविध देवप्रतिमाओंकी प्रतिष्ठाविधि। ६७ वें में जीर्णोद्धारका वर्णन है। ७१वेंमें गणेशपूजा, ८६वेंमें विद्या और कलाओंका शोधन है। ९१वें अध्यायमें नाना मन्त्रोंका कथन है। ९४वेंमें शिलाविन्यासका वर्णन है।

१०५में गृह आदि वास्तुविद्याका वर्णन है। १०६—१०८ अध्यायमें भुवनकोषका वर्णन है। १०९ से विविध तीर्थोंका माहात्म्य है। १२४ में युद्धजयार्णवका वर्णन है। १४२में मन्त्रों एवं ओषधियोंका वर्णन है। १५० वेंमें मन्वन्तरोंका वर्णन है। १५१वेंमें वर्णाश्रमेतर धर्मका कथन है। १५२में गृहस्थवृत्तिका निरूपण है। १५४में विवाहका निरूपण है। १५५में आचाराध्याय है। १६०में वानप्रस्थके धर्म हैं। १६१में यतिके धर्म हैं। १६२में धर्मशास्त्रका निरूपण है। १६४में ग्रहोंकी यज्ञविधि है। १६६में वर्णधर्मोंका कथन है। १६९ से प्रायश्चित्त है। १७५में व्रतकी परिभाषा है।

२१४ अध्यायमें मन्त्रोंकी महिमा है। २१५में संध्याकी विधि है। २१६में गायत्रीका अर्थ। २१८में राज्याभिषेक-प्रकार। २२३में राजधर्म। २२४में स्त्रीरक्षा और काम-शास्त्रका उपपादन। २२५में राजाका कर्तव्यनिर्देश। २२९में स्वप्नाध्याय। २३०में शकुनोंका वर्णन। २४०में छः उपायोंका वर्णन। २४१में साम आदि ४ उपाय। २४२में राजनीति। २४३में पुरुषके लक्षणोंका निर्देश। २४४में स्त्रियोंके लक्षणका निरूपण। २४६में रत्नोंके लक्षणोंका प्रकार। २४९में धनुर्वेदका वर्णन। २५०में अस्त्रशिक्षाका प्रकरण। २५१में वाहनोंपर आरोहणका प्रकार। २५४में ऋण आदिका विचार। २६४में देवपूजा, वैश्वदेवादि-बलि। २७१में वेदोंकी शाखाओंका निरूपण, आयुर्वेदीय सिद्ध ओषधियोंका निरूपण। २८०में सर्वरोगहर औषधोंका उपपादन। २८२में वृक्षायुर्वेदका उपपादन। २८३में औषधोंका निरूपण। २८५में सिद्धयोगोंका निरूपण। २८६में मृत्युञ्जय कल्पका कथन। २८७में हाथीकी चिकित्सा। २८९में घोड़ोंकी चिकित्सा। २९०में अश्वोंकी शान्ति। २९५में साँपसे काटे हुएकी चिकित्सा। २९७में विषके हरण करनेवाले मन्त्रोंका निरूपण। २९९में

* 'श्रीसनातनधर्मालोक' ग्रन्थमालाके दस पुष्प प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम पुष्प अब दुष्प्राप्य हैं। इस ग्रन्थमालाके पढ़नेसे धर्मविषयक सभी शङ्काएँ दूर हो जाती हैं। इसे हमारे नामसे फर्स्ट बी० १९ लाजपत नगर, नई दिल्ली २४ से मँगाया जा सकता है। विद्वानोंने इस ग्रन्थमालासे अपना परितोष व्यक्त किया है।

बालग्रहहर बालतन्त्र । ३०० में ग्रहोंके मन्त्रोंका कथन ।

३०८में त्रैलोक्य-मोहिनी लक्ष्मीकी पूजा । ३१३में नाना प्रकारके मन्त्र । ३१५में स्तम्भन आदिके मन्त्र । ३२१में अघोर मन्त्रोंका शान्तिकल्प । ३२४में रुद्रशान्ति । ३२७में देवालयका माहात्म्य । ३३१—३३४में लौकिक-वैदिक छन्दोंके भेद । ३३५में प्रस्तारादिका निरूपण ।

३३७-३३८में काव्यनाटकादिनिरूपण । ३३९-३४०में रसनिरूपण । ३४३-३४५में शब्द, अर्थ तथा उभय अलङ्कारोंका वर्णन । ३४६-३४७में काव्यके गुण-दोषोंका वर्णन ।

३४९में व्याकरणका निरूपण । ३५०—३५३में संधियोंका तथा लिङ्गोंका निरूपण । ३५४—३५६में कारक-समास-तद्धितोंका निष्पादन । ३५७में उणादियोंका निरूपण । ३५८में 'तिङ्' विभक्तियोंके सिद्धरूप । ३५९में कृदन्तोंके सिद्धरूप । ३६०में स्वर्गपातालवर्ग । ३६१में अव्ययवर्ग । ३६२में नानार्थवर्ग । ३६३में भूमि-वनौषधादिवर्ग । ३६४—३६६में नृ-ब्रह्म-क्षत्रिय विट् शूद्रवर्ग । ३६७में सामान्यनामलिङ्ग । इसीसे अमरसिंहने अमरकोष बनाया ।

३६८में प्रलयोंके भेद । ३७०में शरीरोंके अवयव । ३७१में नरकोंका निरूपण । ३७२में योगके अङ्ग यम-नियम । ३७३में आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार । ३७४—३७६में ध्यान-धारणा-समाधि । ३७७-३७९में ब्रह्मज्ञान । ३८०में अद्वैत ब्रह्मज्ञान । ३८१-३८२में गीतासार, यमगीता । ३८३में अग्निपुराण-माहात्म्य ।

पाठकोंने देख लिया कि इस पुराणमें लोक-कल्याण करनेवाले कितने उपयोगी विषय हैं । इनसे लोक-परलोकमें कितना कल्याण प्राप्त हो सकता है । यह ध्येय रखकर जनताके कल्याणका उद्देश्य रखनेवाले 'कल्याण'ने भी यह 'अग्निपुराणाङ्क' प्रकाशित किया है । जनताको इससे लाभ प्राप्त होनेपर पत्रके संचालक सम्पादकादि अधिकारियोंके समय और धनका व्यय सफल हो सकता है । पुराणोंका महत्त्व जाननेके लिये 'श्रीसनातनधर्मालोकग्रन्थमाला'* अवश्य मँगाइये । इससे आपकी धार्मिक सभी शङ्काएँ दूर होकर धर्मज्ञान प्राप्त हो सकेगा ।

अग्निपुराणका नानाविध महत्त्व

(लेखक—पं० श्रीसभापतिजी मिश्र, साहित्यालंकार, साहित्यरत्न, विद्यावाचस्पति)

भारतीय वाङ्मयमें पुराणोंका विशिष्ट स्थान है । पुराण अपनी विषय-वैविध्यताके कारण महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं । अष्टादश पुराणोंमें अग्निपुराणका अन्यतम महत्त्व है । इसमें पुराणकारने गागरमें सागर भर दिया है । अग्निपुराण अपने साहित्यिक, वैज्ञानिक, कलात्मक, ज्योतिषविषयक एवं व्याकरणविषयक महत्त्वोंके कारण भारतीय ज्ञानराशिकी अक्षय्य निधि है ।

पुराणका अर्थ है—प्राचीन अर्थात् प्राचीन ऋचा-ज्ञानको लौकिक संदर्भमें प्रतिपादित किये जानेके कारण इनको पुराण कहा जाता है । यास्काचार्यने पुराण शब्दकी व्याख्या की है ।

'पुराणं कस्मात् ? पुरा नवं भवति ।'

(निरुक्त ३ । १९ । २४)

अर्थात् जो पहले नवीन था किंतु वर्तमान समयमें पुरातन हो गया । ऐसे साहित्यिक संग्रहको पुराण कहा गया । वर्तमान समयमें जिसकी नवीनता अभीष्ट न हो । इन ग्रन्थोंमें प्राचीन आर्षज्ञान समाहित है, अतः इनको पुराण कहा जाता है । पौराणिक एवं ऐतिहासिक दृष्टिसे इसका महत्त्वपूर्ण योगदान है । पौराणिक संदर्भके परिवेशमें अवलोकन करनेपर हमें अग्निपुराणमें अवतार, सृष्टिक्रम, सूर्य-चन्द्र-वंश-वर्णन, दानव्रतमाहात्म्य, मन्त्रसार, तन्त्रशास्त्र, सामुद्रिकशास्त्र इत्यादिका यत्र-तत्र वर्णन प्राप्त होता है । इसमें प्राचीन-से-प्राचीन मनुष्यादिकी उत्पत्तिके पूर्वके रहस्य, वास्तविक सृष्टि आदिका वर्णन है । यही कारण है कि वर्तमानकी अपेक्षा इसे पुराण कहा गया ।

ईशानकल्पके वृत्तान्त-प्रकरणमें अग्निदेवने वसिष्ठजीको जो उपदेश दिया था वही आगे चलकर 'अग्निपुराण'के नाम-से प्रसिद्ध हुआ, जिसमें श्लोकोंकी संख्या सोलह हजार थी—

* इस ग्रन्थमालाके दस पुष्प प्रकाशित हो चुके हैं । पञ्चम पुष्पसे दशम पुष्पतकमें प्रायः एक-एक हजार पृष्ठ हैं । इनमें अनेकों शङ्काओंका समाधान किया गया है । आलोक-ग्रन्थमाला, फर्स्ट बी० १९ पो० लाजपतनगर (नई दिल्ली २४) इस पतेसे मँगाया जा सकता है । जिस-जिसने इसे मँगाकर पढ़ा, उस-उसने अपनी प्रसन्नता व्यक्त की है ।

यत्तदीशानकं कल्पं वृत्तान्तमधिकृत्य . च।
वसिष्ठायाग्निना प्रोक्तमाग्नेयं तत्प्रचक्षते॥
तच्च षोडशसाहस्रं सर्वक्रतुफलप्रदम्॥

(मत्स्यपुराण ५३। २८-२९)

किंतु यह लक्षण अग्निपुराणके एक सीमित क्षेत्रतक ही चरितार्थ होता है। श्लोक-संख्या तो ठीक है; परंतु सम्भवतः अधिकांश अंश लुप्त हो गया। जहाँ अन्यान्य पुराणों एवं उपपुराणोंके उद्धरण सम्मिलित हो गये हैं, जिससे यह परवर्ती कालकी कृति मानी जाने लगी। किंतु यह अति प्राचीन पुराण है। 'अग्निर्मे वाचि श्रितः।' (तैत्ति० ३। १०। ८। ४) अर्थात् अग्निपुराण ब्रह्माजीको कण्ठाग्र था। ब्रह्माजीने सृष्टिके आदिकालमें सर्वप्रथम पुराणोंका स्मरण किया था, तदनन्तर उनके मुखसे वेद निर्गत हुए—

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय १०४)

इस प्रकार ब्रह्माजीने पूर्वकल्पोंके (पुराण) ब्रह्माण्डोंका स्मरण करके ही ब्रह्माण्ड निर्माण किये होंगे। यह कथन यजुर्वेदके 'यथापूर्वमकल्पयत्' आदि श्रुतिवाक्योंसे भी पुष्ट होता है। जिस प्रकार ब्रह्माजीने यथापूर्व (अर्थात् पुराणोंके बारेमें) सोचा था, उसीकी कल्पना वेदोंमें सार्थक हुई। अतः वेदोंके अनुशीलनके पूर्व पुराणोंका ज्ञान आवश्यक है।

प्राचीनकालमें इन पुराणोंकी परम्परा मौखिक थी। इससे भी यह सिद्ध होता है कि पुराणोंके आदिम स्मरणकर्ता ब्रह्माजी थे और उसके उपदेशक ब्रह्माके मानसिक पुत्र मन्त्रद्रष्टा ऋषिलोग थे।

य एव मन्त्रब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते खलु इतिहासपुराणस्य।

(वात्स्यायनःन्यायदर्शन-भाष्य ४। १। ६२)

जो ऋषि मन्त्रब्राह्मणयुक्त वेदोंके द्रष्टा हैं, वे ही इतिहास और पुराणोंके प्रवक्ता हैं। इस प्रकार वेदों और पुराणोंकी सरणि ऋषियोंपर आधारित है। अतएव अग्निपुराणकी वास्तविक प्राचीनता स्वतःसिद्ध हो जाती है।

इस पुराणमें उपर्युक्त वर्णनोंके अतिरिक्त काव्यशास्त्रके लिये भी पर्याप्त सामग्री मिल जाती है। काव्यभेद, नाटकभेद, अलंकारभेद एवं नवरसोंका साङ्गोपाङ्ग वर्णन प्राप्त होता है। वृक्षायुर्वेद, गवायुर्वेद इत्यादि आयुर्वेदके प्रकरण भी प्राप्त हो जाते हैं। शब्दकोष, रूपावली, छन्दःशास्त्र, योगशास्त्र, वेदान्तशास्त्र इत्यादि समस्त विषयोंपर पुराणकारकी स्रोतस्विनी प्रतिभा मुखरित हुई है।

अग्निपुराणमें अवतार—पुराणके प्रारम्भमें ही अग्निदेवने वसिष्ठजीसे मत्स्यावतारका वर्णन किया है। एक बार कल्पान्तमें नैमित्तिक प्रलय हुआ। उस समय वैवस्वत मनु जलमें तर्पण कर रहे थे। उनके हाथमें एक मछली आ गयी। वैवस्वत मनुने उसे कमण्डलुमें रख लिया। पुनः उस मत्स्यने बड़े होकर बड़े स्थानकी याचना की। तब मनुने उसे एक तालाबमें डाल दिया; फिर उस मत्स्यने बड़े होकर विस्तृत स्थानकी प्रार्थना की। तब मनुने परमेश्वरका अवतार समझकर उस मत्स्यकी प्रार्थना की। इसपर वह मत्स्य बोला कि 'आजके सातवें दिन महाप्रलय हो जायगा और मनुको नावकी रचना कर तैयार रहनेकी आज्ञा दी और उन्हें प्रलय-सागरसे पार लगानेका भार स्वीकार किया।' इस प्रकार मत्स्यकी बात सुनकर वैवस्वत मनु प्रलय-वेलाकी प्रतीक्षा करने लगे। सातवें दिन उस महामत्स्यने आकर अपने सींगमें नाव लगाकर उसे हिमालयपर पहुँचा दिया।

एकशृङ्गधरो मत्स्यो हैमो नियुतयोजनः।
नावं बबन्ध तच्छृङ्गे मत्स्याख्यं च पुराणकम्॥

(अग्नि० २। १५)

इसी अवतारसे वर्तमान सृष्टिकी रचना हुई है। मत्स्यावतारके अतिरिक्त कूर्मावतार, वाराह एवं रामावतारका विस्तारमें वर्णन है। रामायण एवं महाभारतका आख्यान भी इसमें वर्णित है। ध्रुवोपाख्यान, स्वायम्भुव-वंश, कश्यप-वंश एवं जगत्-सर्ग इत्यादिका वर्णन भी प्राप्त होता है।

अग्निपुराणमें काव्यतत्त्व—पुराणके ३३७वें अध्यायमें काव्यतत्त्व-विवेचन है। वहाँपर काव्यके गद्य, पद्य और मिश्र—तीन भेद किये गये हैं। अगले अध्यायमें नाट्य-निरूपण है। उसके दो भेद किये गये हैं, नाटक और नाटिका। नाटकके १० तथा नाटिकाके २७ भेद बताये गये हैं।

अग्निपुराणमें कविको प्रजापति ब्रह्मा माना गया है और कहा गया है—

अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते॥

शृङ्गारी चेत्कविः काव्ये जातं रसमयं जगत् ।
स चेत् कविर्वीतरागो नीरसं व्यक्तमेव तत् ॥
(अग्नि० ३३९ । ११)

कवि इस अपार काव्यसंसारका ब्रह्मा है; क्योंकि जिस प्रकार काव्यसंसारका निर्माण करना चाहता है, वह करता है । यदि वह सरस है तो विश्वको रसमय अन्यथा नीरस बना देता है ।

अग्निपुराणमें वर्णित नाटकके १० भेदोंमें नाटक, सम्प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिंभ, व्यायोग, समवकार, वीथि, अङ्क और इहामृग तथा नाटिकाके २७ भेदोंमें सट्टक, शिल्पक, कर्णा, दुर्मल्लिक, प्रस्थान, भाणिका, भाणी, गोष्ठी, हल्लीशक, रासक, नाट्यरासक, उल्लाप्यक, प्रेषण, काव्य, श्रीगदित आदि निरूपित किये गये हैं । नाटकके आरम्भमें नान्दीपाठ होता है, जिसमें देववन्दना अथवा गुरुवन्दना या गो, ब्राह्मण राजाओंकी प्रशंसा की जाती है । नान्दीके अन्तमें सूत्रधार, नाटकका संक्षिप्त परिचय देता है । वस्तु, नायक और रस—नाट्यके तीन अङ्ग होते हैं । कथा पञ्च-अर्थप्रकृति एवं पञ्च-संधियोंसे युक्त होती है । चार प्रकारका अभिनय आङ्गिक, वाचिक, सात्त्विक और आहार्य होता है ।

काव्यशास्त्रके विभिन्न सम्प्रदायोंकी दृष्टिसे अग्निपुराण अलंकार-सम्प्रदायके अन्तर्गत आता है । अग्निपुराण अलंकारशास्त्रका मूल ग्रन्थ है । अलंकारोंका विस्तृत विवेचन इसमें किया गया है और उसके दो भेद किये गये हैं—शब्दालंकार और अर्थालंकार । अर्थालंकारकी अधिक विवेचना की गयी है और अर्थोंके अलंकरणको 'अर्थालंकार' माना गया है । अर्थालंकारके बिना शब्दसौन्दर्य भी रमणीय नहीं होता ।

अलंकरणमर्थानामर्थालंकार इष्यते ।
तं विना शब्दसौन्दर्यमपि नास्ति मनोहरम् ॥
अर्थालंकाररहिता विधवेव सरस्वती ।
स्वरूपमथ सादृश्यमुत्प्रेक्षातिशयावपि ॥
(अग्नि० ३४४ । १-२)

अग्निपुराणमें कुछ ऐसे अलंकारोंका उल्लेख मिलता है, जो परवर्ती साहित्यमें नहीं मिलते हैं ।

छाया मुद्रा तथोक्तिश्च युक्तिगुम्फनया सह ॥
वाकोवाक्यमनुप्रासश्चित्तं दुष्करमेव च ।
ज्ञेया नवालंकृतयः शब्दानामित्यसंकरात् ॥
(अग्नि० ३४२ । १९-२०)

केवल अनुप्रासको छोड़कर शेष अलंकार पुराणवत् नहीं प्राप्त होते । अलंकृत काव्यको ही गुणयुक्त माना गया है । श्लेष, लालित्य, उदारता, गाम्भीर्य इत्यादि ७ काव्यगुण माने गये हैं । उपयुक्त रीतिसे शब्दोंका संनिवेश ही श्लेष है । ओज, प्रसाद, माधुर्यके अन्तर्गत समस्त गुण आ जाते हैं । गुणोंके अतिरिक्त काव्यदोषोंका भी विवेचन किया गया है ।

उद्वेगजनको दोषः सभ्यानां स च सप्तधा ।
वक्तृवाचकवाच्यानामेकद्वित्रिनियोगतः ॥
(अग्नि० ३४७ । १)

गुणोंके वैपरीत्य भावको दोष माना गया है । असाधुत्व और अप्रयुक्तत्व—दो प्रकारके काव्यदोष माने गये हैं, छन्द-शास्त्रके विरुद्ध शब्द-प्रयोग असाधुत्व है तथा व्युत्पत्तिसे अनिबद्ध शब्द-दोषको अप्रयुक्तत्व कहते हैं । शब्दकोष भी ३६०—३६९ अध्यायोंमें मिलता है । परवर्ती कोषकार अमरसिंहने अपने कोष-निर्माणमें इस ग्रन्थसे पर्याप्त सहायता ली है । अग्निपुराणके कई श्लोक पूरे-पूरे अमरकोषमें प्राप्त होते हैं । इस प्रकार काव्यशास्त्रकी दृष्टिसे अद्भुत सामग्री इस पुराणमें प्राप्त होती है ।

अग्निपुराणमें आयुर्वेद—स्वास्थ्य-रक्षा आयुर्वेद-पर निर्भर करती है । युक्त संयम, आहार, विहार, शयनसे आयुरक्षा होती है । तभी धर्म तथा संस्कृतिकी उन्नति हो सकती है । ओषधियोंके बारेमें प्राचीन ऋषियोंको ज्ञान था कि प्रत्येक व्यक्तिको उसी देशकी ओषधि सेवन करना चाहिये । 'यस्य देशस्य यो जन्तुस्तज्जं तस्यौषधं हितम् ।' इसी कथन-की चरक, सुश्रुत आदिने भी पुष्टि की है । पुराणोंमें वर्णित ओषधियोंसे हमारा हित अधिक हो सकता है । इसमें अश्वायुर्वेद तथा विषचिकित्सा आदिके प्रकरण भी प्राप्त होते हैं ।

हिङ्गुपुष्करमूलं च नागरं साम्लवेतसम् ।
पिप्पलीसैंधवयुक्तं श्लक्ष्णं चोष्णवारिणा ॥
(अग्नि० २८९ । १२-१३)

अर्थात् हींग, पुष्करमूल, मोथा, अम्लवेत, निम्बू-बिजौरा, पिप्पली, सेंधा नमक—इनको बारीक कर गरम जलमें देनेसे अश्वका पेट-दर्द दूर हो जाता है ।

शिरीषपुष्पस्य रसं भावितं मरिचं सितम् ।
पाननस्याञ्जनाद्यैश्च विषं हन्यान्न संशयः ॥
(अग्नि० २९७ । ५-६)

अर्थात् शिरीषके पुष्परसमें सफेद मिर्चको भिगोकर

सूँघनेसे या आँखमें डालनेसे विषैले जन्तुओंका विष उतर जाता है।

अग्निपुराणमें मन्त्रशास्त्र—आयुवर्द्धन एवं आरोग्यताके लिये देवताओंका मन्त्रजाप करना महौषधि है। ओंकार मन्त्रका जप करना स्वर्ग तथा मोक्षदायक होता है। ओंकार ही सर्वश्रेष्ठ मन्त्र है। उसका जाप करके मानव अमर हो जाता है। श्रेष्ठ गायत्रीमन्त्रका जाप करना भोग और मुक्तिदायक है। 'ॐ नमो नारायणाय।' यह मन्त्र सर्वार्थ-साधक है। रोगी व्यक्तियोंके लिये 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।' तथा 'ॐ हूं नमो विष्णवे।' यह मन्त्र ओषधिका काम करता है। रोगसे पीड़ित महानुभाव अवश्य लाभ उठावें।

अग्निपुराणमें स्वप्न एवं शकुन-विचार—

चूर्णनं मूर्ध्नि कांस्यानां मुण्डनं नग्नता तथा।
स्नेहपानावगाहौ च रक्तपुष्पानुलेपनम्॥
(अग्नि० २२९। १२—१४)

स्वप्नमें अपने ऊपर किसी चीजका टूटना (गिरना), सिरका मुण्डन, स्वयं नंगा होना, तेल पीना, तेलमें स्नान करना, रक्तपुष्पोंकी माला पहनना अशुभ होता है। इसको अन्य व्यक्तियोंसे नहीं कहना चाहिये।

एहीति पुरतः शब्दः शस्यते न तु पृष्ठतः।
गच्छेति पश्चाच्छब्दोऽन्यः पुरस्तात्तु विगर्हितः॥
(अग्नि० २३०। ५)

यात्रा-समय यदि कोई आगेसे बुलावे तो शुभ, पीछेसे बुलावे तो अशुभ, पीछेसे जानेकी आज्ञा दे तो शुभ, आगेसे जानेकी आज्ञा दे तो अशुभ फलकारक होता है।

इस प्रकार हमारे प्राचीन ज्ञानकी अनुपम थाती इन पुराणोंमें सुरक्षित है। इनको न जानना अपने प्रति अज्ञान है। क्योंकि—

मन्त्रवत् ब्राह्मणस्यापि वेदत्वं सर्वसम्मतम्।
तस्माद् ब्रह्मादिनामेव पुराणाख्येति कथ्यते॥

अग्निपुराणपर पाश्चात्य दृष्टिकोण और उसकी एक समीक्षा

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

भगवत्प्राप्ति (या शोक-क्लेशादिका अपनोदन कर सच्चे सुख-शान्तिका विधान करना) ही भारतीय शास्त्रोंका मुख्य लक्ष्य रहा है। अतः उनके पढ़ने-सुननेकी विधि भी दूसरी है। गुरु तथा शास्त्रको प्रणिपात-प्रणामद्वारा पूर्ण श्रद्धापूर्वक सुनकर मनन करनेसे उस प्रभुका साक्षात्कार होता है। गीतामें भी कहा गया है—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥
(४। ३४)

सच बात तो यह है कि इन रामायण, महाभारत उपनिषद्, गीता, पुराणादिको जिन लोगोंने कभी श्रद्धापूर्वक ध्यानसे पठन-श्रवण-मनन कर लाभ उठाया है, उनका मस्तक-हृदय उनके प्रति विवशतः श्रद्धासे झुक ही जाता है और साष्टाङ्ग दण्डवत् किये बिना उनसे रहा नहीं जाता। यद्यपि ये ग्रन्थ निर्जीव जड-से प्रतीत होते हैं, फिर भी उनका उपकार इतना भारी पड़ता है कि सामान्य प्राणीसे उन्हें भी प्रणिपात किये बिना रहा नहीं जाता। अतः कहा भी गया है—

यावज्जीवं त्रयो वन्द्या वेदान्तो गुरुरीश्वरः।

अर्थात् 'शास्त्र, गुरु तथा ईश्वर यावज्जीवन वन्दनीय तथा पूजनीय हैं।' कहीं तो इस अध्यात्मविद्या—सात्त्विकी विद्याको, जो भगवान्‌को प्राप्त करा दे, गुरुओंका भी गुरु तथा ईश्वरकी भी प्रापिका—योनि कहा गया है—

'विद्या गुरूणां गुरुः', 'शास्त्रयोनित्वात्', 'तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि।', इत्यादि।

'अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।' वह अध्यात्मविद्या ही परा विद्या है, जिससे उस अक्षर परमात्माका ज्ञान होता है। 'सा विद्या तन्मतिर्यया।' (भागवत ४। २९। ४९) 'तदन्यत् शिल्पकौशलम्।', भगवत्तत्त्वज्ञादिके अतिरिक्त और सब तो शिल्प-कला-कौशल्य मात्र है। इसी दृष्टिसे पुराणोंकी महत्ता है। वे भगवत्प्राप्तिमें सर्वाधिक प्रेरक एवं सहायक हैं। उनमें संसारी, अनुसंधान-कार्य एक प्रकारसे नन्दनवनमें प्रविष्ट कीटके उपान्तभोजनान्वेषणकी चेष्टाके ही समान है। कहाँ तो साक्षात् भगवान्‌की अमृतमयी चर्चा और कहाँ उसमें तामसी स्थान-समयादिके अनुसंधानकी व्यर्थ मिथ्या चेष्टा! यह सब कामधेनुकी उपेक्षा कर

खरीकी ही सेवा करनेकी-सी बात है। भागवतादिमें स्पष्ट ही नारदजीद्वारा व्यासजीको प्रतिपद भगवन्नाम-चर्चायुक्त ग्रन्थ-निर्माणका ही आदेश है और यह भी कहा गया है कि भगवद्भिन्न प्रयोजनसे किया गया कार्य अज्ञानमय है। केवल उस प्रभुकी प्राप्तिके लिये ही विद्वान् चेष्टा करें; क्योंकि नियतिके विधानसे सुख-प्राप्ति तो दुःखकी ही तरह अवश्यम्भावी है—

तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो न लभ्यते यद्भ्रमतामुपर्यधः।
तल्लभ्यते दुःखवदन्यतः सुखं कालेन सर्वत्र गभीररंहसा॥
(श्रीमद्भा० १।५।१८)

प्रायः प्रत्येक पुराणमें ऐसी सामग्री प्रचुर मात्रामें है। इन पुराणोंके ही प्रगाढ़ अध्ययनसे गोस्वामी तुलसीदासजीने 'मानस'-जैसे दिव्य काव्यका प्रणयन कर भक्ति-भागीरथीकी सरिता बहायी, जिसमें प्लावित होकर आज भी जनमानस अद्भुत सुख-शान्तिका अनुभव करता है। पर उन्हीं पुराणोंका आजका अध्येता भिन्न उपनेत्र तथा तामसी दृष्टिकोणसे अनुसंधान कर स्वयं भी दुखी होता है और अन्योंको भी दुखी करता है। 'वस्तुसाम्येऽपि दृष्टिरसाम्याद् विभक्तः पन्थाः।' पहले भारतमें सादर पुराण-श्रवणकी प्रणाली थी। आज तो मनचाहे ढंगसे कहीं भी रखकर, किसी प्रकार भी बैठ-लेटकर उनकी समीक्षा होती है—जिसका फल भी अशान्ति ही है—असुरोंद्वारा क्षीरसागरके मन्थनके समान। तथापि उन लोगोंका कार्य बड़ा विशाल हो गया है। संक्षेपमें यहाँ विभिन्न शीर्षक तथा अनुच्छेदोंमें उनके श्रम-संधानका दिग्दर्शन तथा विचार प्रस्तुत करनेका यत्न किया जा रहा है—

अग्निपुराणका रचना-काल

अग्निपुराणके रचना-कालपर मैंने कल्याणके 'रामवचनामृत-अङ्क'में कुछ विचार प्रकट किया है। कालके विस्तारपर स्वयं अग्निपुराणमें भी विस्तृत मत प्रतिपादित है।[१] पर पाश्चात्त्योंने तो सारे विश्वको दो हजार वर्षके अंदर ठूँसना चाहा है। कोलब्रूक,[२] वंस कैनेडी,[३] विल्सन, बुह्लर,[४] पार्जिटर, कीथ,[५] स्मिथ,[६] मैकडानल[७] तथा जैक्सन[८] पुराणोंका समय ईस्वी ५वीं शतीसे ९वीं-१० वीं के बीच ही रखना चाहते हैं। डा० हाजरा, डा० राजेन्द्रलाल मित्र आदि भारतीय विद्वान् भी इनसे पूर्ण प्रभावित हैं। मन्मथनाथ दत्त शास्त्रीने भागवत, हरिवंश, महाभारत, विष्णुपुराण, गरुडपुराण, मार्कण्डेयपुराणादिके साथ अग्निपुराणका भी अंग्रेजीमें अनुवाद किया था। उन्होंने अग्निपुराणकी भूमिकामें विल्सनके एक पूरे लेखको ही, जो एसियाटिक सोसाइटीके जर्नलके जिल्द १—१८३२ ई० पृष्ठ ८१—८६ वें, प्रथम अङ्कमें ही छपा था, उद्धृत कर दिया है और मित्रादि कई विद्वानोंके मतानुरोधसे इसका समय मुसल्मानी आक्रमणके कुछ पूर्व ही मानना है।[९]

इसके साथ ही इन सभी विद्वानोंका यह भी आग्रह रहा है कि अग्निपुराण अमरकोश, कामन्दकनीति, याज्ञवल्क्य-

१—द्रष्टव्य-अग्निपुराण-२७२वाँ अध्याय।

२—द्रष्टव्य—Asiatic Researches, Vol. VIII., p. 467, & Miscellaneous Essays on India, Vol. 1. p. 104.

३—Researches into the nature and affinity of ancient Hindu Mythology, IV. p. 19-22.

४—Indian Antiquities, XXV (1896), p. 323.

५—Journal of the Royal Asiatic Society, 1914, p. 1021-31.

६—Early History of India, p. 24.

७—History of Sanskrit Literature, p. 209.

८—Bombay Branch of the Royal Asiatic Society, Centenary Memorial Volume 1, p. 72.

९—It is extremely difficult to find out exactly the period when the cyclopaedic work was written. It was undoubtedly written long before the Mohammedan invasion. "The chapters twelfth to fifteenth, in which a synopsis of the Ramayana and the Mahabharata is given, conclusively prove that the work was written long after the Ramayana and the Mahabharata and at a time when those works had become very old and abstracts of them, were likely to be prized by the general readers." This is the view of Dr. Rajendra Lal Mitra. Besides many mystic rites, mantras and ceremonies with which this Purana teems and many of which are entirely obsolete now and thoroughly inexplicable clearly proves its antiquity. The mantras are generally of the Tantric type. It may be that this work might have been written after the Tantrik form of worship had been introduced in this country. (Introduction to the Agni Purana, page v)

स्मृति, भरतनाट्यशास्त्र, मनुस्मृति तथा अन्यान्य पुराणोंसे संगृहीत है।"* तथापि ये लोग अग्निपुराण, वायुपुराण तथा भविष्यपुराणको तो प्राचीनतर मानते हैं और भागवत, पद्म-पुराणादिको बहुत ही आधुनिक मानते हैं।" इसमें प्रायः ये सभी एकमत हैं।

काल-निर्णयपर स्वयं अग्निपुराणका एक विचित्र निर्देश

यह सब परिणाम है दो हजार वर्षोंमें कालको सीमित कर रखनेका। मानो ईसाके पूर्व ये लोग कुछ होना शक्य नहीं मानना चाहते। अतः समस्त भारतीय घटनाओं, राम-कृष्णादिकी स्थिति, वेदसे लेकर पुराण, महाभारत, धर्मशास्त्र, काव्य-नाटक सबको ये इ० पू० २-३ शतीसे ईसा बाद १०वीं शतीतक ही पटक-ठूँसकर रख देना चाहते हैं। ये लोग अग्निपुराणको थोड़ा प्राचीन मानते हैं, पर इसमें कामन्दक-नीतिकी बातें आयी हैं, तो ये लोग उसे कामन्दकसे पीछेका मानते[१२] हैं, अतः ईसाकी ५वीं शतीकी रचना मानते हैं। पर कामन्दककी कथा तो महाभारत शान्तिपर्वमें भी आती है, फिर वह इतना पीछेका आदमी कैसे हो सकता है? इसी प्रकार ये लोग भगवान् राम तथा रामायणादिको भी इन्हीं दो सहस्रवर्षके आस-पास लाना चाहते हैं। और तो और, ये लोग वाल्मीकिरामायणको महाभारतके बादका ग्रन्थ मानते हैं।[13] किमधिकम्, हमारे भारतवासी प्राचीन निष्ठाके विद्वान् भी भगवान् रामको नौ लाख वर्षोंसे अधिक कोई नहीं मानते। यदि इनके लेखोंका संग्रह किया जाय तब तो वह एक अलग ही ग्रन्थ हो जायगा। पर पुराण तो

10—

A—"From the general sketch of Agni Purana, it is evident that it is a compilation from various works, that consequently it has no claim in itself to any great antiquity, although, from the absence of any exotic materials, it might be pronounced earlier, with perhaps a few exceptions, than the Mohammedan invasion. From the absence also of controversial or sectarial spirit, it is probably anterior to the struggles that took place in 8th and 9th centuries of our era between the followers of Siva and Visnu." (Wilson—Journal of the Asiatic Society of Bengal, Volume 1., 1832, pp. 90)

B—The cyclopaedic character of the Agni Purana, as it is now described, excludes it from any legitimate claims to be regarded as a Purana, and proves that its origin can not be very remote. It is subsequent to the Itihasas, to the cheif work on grammar, rhetoric, and medicine, and to the introduction of the Tantrik worship of Devi. When this latter took place, is yet far from determined; but there is every probability that it dates long after the beginning of our era. (Wilson—Introduction to Visnu Purana)

C—The likely inference is that this work was written after the Tantrik period and as the author wanted to make a compilation of the history, mythology, rites, ceremonies & so forth, of the Hindus for the information of the general readers he gave an account of many obsolete rites and mantras that were in vogue in very ancient time.

(Manmathnath Dutta Sastri—Introduction to Agni Purana)

11—द्रष्टव्य—Introduction to Agni Purana—by Rajendra Lal Mitra, Biblioithica Indica Series, published by the Royal Asiatic Society of Bengal, page 2 - 7.

१२—कामन्दकको ये लोग ५वीं शतीका व्यक्ति मानते हैं और अग्निपुराणको उसके बादका। पर यह भी ठीक नहीं है। इसका उत्तर मैंने कल्याण-रामवचनामृत-अङ्कमें लिखा है, उसे देखना चाहिये।

13—"Epic poetry is divided by the Hindus themselves into two genera, one called 'Tales and Legends' (Itihasa and Purana) and the other called, 'art poem' or simply 'poem' (Kavya, the production of a kavi or finished poet); but the compilation named Mahabharata is both Itihasa-Purana, its original designation, and then Kavya till the introductory verses exalt it as such. In its origin it was undoubtedly a popular story of the glorified historical character which attaches to tribal lays even today. The second epic, the Ramayana, has always stood as the type and origin of the refined one-author-poem, and whatever may have been the date of its germ as story, but as an art product, it is later than the Mahabharata. Thus the oldest references which may indicate epic poetry point rather to the story of the Bharatas than to the story of Rama.

(H. Jacobi, E. W. Hopkins, Das Ramayan, Cambridge Hist. Ind. V. I. p. 224) Edn. 1962

वाल्मीकि ऋषि, वाल्मीकीय रामायण और भगवान् रामको प्रायः दो करोड़ वर्ष प्राचीन समकालीन ही बतलाते हैं। यह बात आश्चर्यकर होनेपर भी कालसम्बन्धी उदार, किंतु सत्य तथ्य भी है। देखिये, इस विषयमें अग्निपुराणका क्या मत है। अग्निपुराणके अनुसार पुराण देवताओंद्वारा विभिन्न समयोंमें कहे गये। यथा—

वाराहकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य पराशरः।
त्रयोविंशतिसाहस्रं वैष्णवं प्राह चार्पयत्॥
चतुर्दशसहस्राणि वायवीयं हरिप्रियम्॥
श्वेतकल्पप्रसंगेन धर्मान् वायुरिहाब्रवीत्।
सावर्णिना नारदाय ब्रह्मवैवर्तमीरितम्।
रथान्तरस्य वृत्तान्तमष्टादशसहस्रकम्॥
यत्राग्निलिङ्गमध्यस्थो धर्मान् प्राह महेश्वरः॥
आग्नेयकल्पे तल्लिङ्गमेकादशसहस्रकम्।

(अग्निपुराण २७२। ३–५, १३–१५)

अर्थात् विष्णुपुराण पराशरप्रोक्त है और उसमें वाराहकल्पका वृत्तान्त है। वायुपुराणमें श्वेतकल्पका प्रसंग है और वह वायुप्रोक्त है। ब्रह्मवैवर्तमें रथान्तरकल्पकी कथा है, वह नारदजीसे सावर्णि मनुकेद्वारा कहा गया था। भागवतपुराणमें सारस्वतकल्पका प्रसंग है और लिङ्गपुराणमें आग्नेयकल्पका वृत्तान्त है और ये पुराण कल्प-कल्पमें उत्पन्न अति ही श्रद्धाकी वस्तु एवं परम प्राचीन हैं। सौभाग्यसे ही ये हमें इस रूपमें प्राप्त हो गये हैं।

पर इन बातोंको ये क्षेपक कह देंगे। पता नहीं, यह प्रक्षेपधारणाकी शङ्का-पिशाची कहाँतक जायेगी। ये बातें ही तो सभी पुराणोंके पन्ने-पन्नेसे निकलने लगेंगी। देखिये वायुपुराण भी कहता है—

यज्ञं प्रवर्तयामास चैत्ये वैवस्वतेऽन्तरे ॥XXX
बलिसंस्थेषु लोकेषु त्रेतायां सप्तमे युगे।
दैत्यैस्त्रैलोक्य आक्रान्ते तृतीयो वामनोऽभवत् ॥XXX
त्रेतायुगे तु दशमे दत्तात्रेयो बभूव ह।
नष्टे धर्मे चतुर्थश्च मार्कण्डेयपुरस्सरः॥
पञ्चमः पञ्चदश्यां तु त्रेतायां सम्बभूव ह।
मांधातुश्चक्रवर्तित्वे तस्थौ तथ्यपुरस्सरः॥
चतुर्विंशे युगे रामो वसिष्ठेन पुरोधसा।
सप्तमो रावणस्यार्थे जज्ञे दशरथात्मजः॥

(वायुपुराण ९८। ७१, ७४, ८९–९२)

अर्थात् यज्ञावतार वैवस्वतमन्वन्तरके प्रथम त्रेतामें, नृसिंहावतार वैवस्वतमन्वन्तरके चतुर्थ त्रेतामें, वामनावतार वैवस्वतमन्वन्तरके सप्तम त्रेतामें, दत्तात्रेयावतार वैवस्वत-मन्वन्तरके दशम त्रेतामें, परशुरामावतार १९वें तथा रामावतार २४वें त्रेतामें हुआ था। यही 'कल्प-कल्प प्रति प्रभु अवतरहीं' का रहस्य है। आज २८वाँ कलियुग है। अतः प्रायः २ करोड़ वर्ष रामावतारके हुए व्यतीत हो गये।

और यह बात केवल वायुपुराणमें ही नहीं, ब्रह्माण्डपुराण २। ८। ५४, ३। ७३। १२; पद्मपुराण, सृष्टि० १४। ६६; महा० सभापर्व, ब्रह्मपुराण २१३, १२४; देवीभागवत ४। १६, १–१७; हरिवंश १। ४१। १२१; मत्स्यपुराण ४७। २४५ में भी यों ही प्राप्त है।

इन सारे प्रकरणोंको मिलानेसे तो कालकी सीमा और बढ़ जाती है। जैसे कई पुराण तो विशेष कल्पमात्रके वैवस्वत-मन्वन्तरादिके विभिन्न युगोंसे ही सम्बद्ध हैं। पर जिन कृष्णादि लीलाओंके विभिन्न पुराणोंमें विभिन्न रूप प्राप्त हैं, उनके लिये कई कल्पोंका उल्लेख है, यही उनकी भिन्नताका रहस्य है। गोस्वामी तुलसीदासने ध्यानसे इस वस्तुका अध्ययन किया था, अतः लिखा था—

कलपभेद हरिचरित सुहाए। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए॥
बिबिध प्रसंग अनूप बखाने। करहिं न सुनि आचरज सयाने॥

(इत्यादि)

अग्निपुराणका रचनास्थल

इसके अतिरिक्त इन विद्वानोंकी यह भी एक विचित्र खोज है कि ये अग्निपुराणको गयाके पण्डोंद्वारा गयामें बैठकर लिखा गया—तैयार किया गया हुआ मानते हैं।[14]

14—A very striking analogy to the mutual relations of the various Puranas is to be found in the case of our own Saxon chronicle, which, as is well known, continued to be written up in various monasteries down to the reign of Stephen, though the editions made after the Roman conquest were independent of each other. Similarly the copies of the original verse of Purana that were possessed by the priests of the great centre of pilgrimage were altered and added to chiefly by the insertion of local events after the fall of a central Hindu

इन लोगोंके मतानुसार ब्रह्मपुराण पुरीके पण्डोंद्वारा तथा अग्निपुराण गयाके पण्डोंद्वारा लिखा गया है।[१५] इसी प्रकार पद्मपुराण पुष्करके पण्डोंद्वारा, वाराहपुराण मथुराके पण्डों, वामनपुराण कुरुक्षेत्रके पण्डों, कूर्मपुराण काशीके पण्डों तथा मत्स्यपुराण नर्मदातटवर्ती ब्राह्मणोंद्वारा लिखा गया। इसी प्रकार स्कन्दपुराणके विभिन्न प्रभास, अवन्ती, केदार, काशी आदि खण्ड तत्तत्क्षेत्रवासी पण्डों-ब्राह्मणों-द्वारा विरचित हुए। व्यासका नाम उन पण्डोंका ही बोधकमात्र है।[१६] पर यदि विभिन्न काल-देशमें, विभिन्न व्यक्तियोंद्वारा इनकी रचना हुई तो इनकी भाषा, रचना-शैली, चित्रण-कार, वृत्ति, पाक सब एक-सी क्यों है, इनका इनके पास कोई उत्तर नहीं है, यद्यपि यह तथ्य इन्हें भी स्वीकार करना पड़ा है।[१७] वक्ता सूतकी जाति—ये लोग पुराणवक्ता सूतको सूत जातिका मानते हैं,[१८] यद्यपि वे ब्राह्मण थे। यह बात पुराणोंमें सर्वत्र स्पष्ट है और शवर-स्वामी, मतंग मुनि-जैसा यह उनका नाममात्र था, अन्यथा सौति, यह तद्धित पद जातिमें नहीं बनता और न बलदेवजीको ब्रह्महत्या-व्रताचरण करना पड़ता। (द्रष्टव्य कल्याण वर्ष २० अङ्क ६ का 'सूतजी सूत जातिके थे' शीर्षक लेख)

इसी प्रकार उनके अन्य भी बहुत-से अनुसंधान हैं। बहुत-सी बातें तो स्वयं परस्परविरोधी हैं। बहुत दिनोंतक इन लोगोंने इसे गप्प तथा डोकरिया-पुराण बनाये रखनेकी चेष्टा की। उसके इतिहास तथा वंशचरितोंको भी मिथ्या माना, पर जब कोई गति न मिली, तो स्मिथको आगे कर इन लोगोंने उसे इतिहासके लिये कुछ अंशोंतक प्रमाण भी मान लिया।

असलमें उनके शोध भी उद्देश्योंसे खाली नहीं थे। उन्हें भारतपर सदा ही शासन करनेका इरादा था, इसलिये निस्सारता दिखलाकर वे अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते थे। उनकी एक नयी शिक्षापद्धति निकली। उसे पढ़कर लोगोंने वस्तुतः अपना जीवन चौपट किया, परलोक बिगाड़ा, देशका ढाँचा ही नष्ट हो गया। उसमें संयम तथा शान्तिका कोई स्थान ही नहीं था। पर अब तो ईश्वरकृपा, उस शिक्षापद्धति-के विद्यालयोंमें प्रवेशके लिये स्थान ही नहीं रह गया है। पर भगवान्‌के यहाँ ऐसी बात नहीं, पुराणाध्ययनमें कोई खर्च भी नहीं, पर इनमें आत्मदर्शन, भगवत्प्राप्ति, शान्तिके

Government had made communications between the different groups of Brahmanas relatively difficult. In this way the Brahma Purana may represent the Orissa version of the original work, just as the Padma Purana may give that of Puskara, the Agni Purana that of Gaya, the Varaha that of Mathura, the Vamana Purana that of Thaneswar, the Kurma Purana that of Banaras (Varanasi), and the Matsya that of the Brahmanas situating on the Narmada river.

(Mr. A. M. Jackson in the centenary volume of the journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society (105), p. 73 : Cambridge History of India, Volume 1, Chapter xiii, The Puranas, By E. J. Rapson, Professor of Sanskrit in the University of Cambridge, page 268, Edition 1962)

१५—पर यह बात भी तो तब होती, जब अग्निपुराणमें गयाकी कोई विशेष चर्चा होती। इसमें 'गयामाहात्म्य' केवल छोटे-छोटे ३ अध्यायोंमें ही है, जब कि वायुपुराणादिमें इसपर कई बहुत बड़े-बड़े अध्याय हैं। इस दृष्टिसे भी अग्निपुराणका गयामाहात्म्य तो वायुपुराणका सार-सारांश मात्र ही लगता है।

१६—"As to the history of these eighteen versions of a common tradition, it seems certain that they were moulded into their present form at various centres of religious activity". (*Ibid*, page 268).

१७—"These are written in the same kind of verse and in the same kind of Sanskrit; and they have much kind of their subject-matter in common. Not isolated verses merely but long passages recur word for word in them all....So far as the nature of their contents is concerned, it is not always possible to draw any hard and fast line of distinction between them." (*Ibid.*—page 264).

१८—The narrator Lomaharṣaṇa Sūta was a Kṣatriya...for Sūtas were a mixed caste. (*Ibid.* page 265).

साम्राज्यकी उपलब्धिका प्रशस्त मार्ग सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। अतः कल्याणकामीको इनका अध्ययन-मनन कर अपना जीवन सफल कर जन्म-मरण-जरा-संसृति आदिके चक्रसे सदाके लिये छुटकारा प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या

(लेखक—श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन)

संसारके सभी प्राणी सुख चाहते हैं। सभी समाज-वेत्ता ऐसी व्यवस्था लानेका प्रयत्न करते हैं, जिसमें सभी प्राणी सुखका अनुभव करें। ऐसी कोई-सी भी व्यवस्था आजतक स्थापित नहीं हो सकी; परंतु ऐसी व्यवस्थाके स्थापनकी कल्पना की जा सकती है। सम्भव है किसी दिन वह कल्पना सत्य सिद्ध हो, परंतु ऐसी व्यवस्थामें भी मृत्युका दुःख तो बना ही रहेगा और ऐसी आदर्श सामाजिक व्यवस्थामें मृत्युका दुःख और भी अधिक तीव्र होगा। ऐसा स्थान, जहाँ हर प्रकारसे मन रम रहा हो, छोड़नेमें अधिक कष्ट होता है। संसारके भोग्य पदार्थोंमें यदि सुख देनेकी शक्ति है तो अवश्य ही उनका विछोह दुःखदायक सिद्ध होगा। मृत्युकी मार दुहरी होती है। जब किसी प्राणीकी मृत्यु होती है तो वह स्वयं कष्ट पाता है और उसके प्रियजन भी दारुण दुःखका अनुभव करते हैं। प्रश्न यह है कि संसारसे मृत्युका दुःख कैसे दूर किया जाय? जबतक यह दुःख दूर नहीं होता, तबतक संसार दुःखरूप है। न केवल अन्तिम परिणाममें परंतु प्रतिक्षण भी। कल्पना कीजिये कि आप गाड़ीमें चल रहे हैं। मित्र-मण्डली है, मोहनभोग है, आमोद-प्रमोदके साधन उपस्थित हैं। इसी समय समाचार मिलता है कि ऊपरसे बम-वर्षा होनेवाली है तो क्या आप इन सब सुखके साधनोंको भोगनेकी मनःस्थितिमें रह सकते हैं? संसारमें जो कुछ भी क्षणिक सुखका हम अनुभव करते हैं, उसका कारण अविचार है। हम अपने और अपने प्रियजनोंके अन्तिम परिणामपर विचार नहीं करते। संसारकी प्रत्येक जड-चेतन वस्तुका अन्त निश्चित है और अन्त दुःखदायी होता है; अतः संसार अशिव है और जो अशिव है, वह असत्य भी है। अतः संसार मिथ्या है। जो लोग अपने या अपने प्रियजनोंके स्मारक खड़े करके इन्हें अमर करना चाहते हैं, उन्हें समझना चाहिये कि प्रथम तो इन स्मारकोंसे मृत्युके दुःखमें कमी नहीं होती। जो थोड़ा-बहुत संतोष अनुभव किया जाता है वह भी निराधार है; क्योंकि ये स्मारक भी अमर नहीं हैं। एक दिन इनका भी विनाश होगा। कुछ लोग अपने 'स्व' को अपनी संतति, जाति अथवा राष्ट्रमें मिलाकर अपने अमर होनेकी बात करते हैं; परंतु संतति, जाति और राष्ट्र भी नश्वर हैं। कुछ लोग वैज्ञानिकोंद्वारा मृत्युको जीते जानेकी सम्भावना प्रकट करते हैं; परंतु इस मनुष्यजातिके जन्मके पूर्व ही, जिसमें ये वैज्ञानिक जन्म लेते हैं, यह पृथ्वी, यह चन्द्र और यह सौर-मण्डल जन्म ले चुका था। इस सौरमण्डलकी भी आयु है। जिस दिन यह बिखरना आरम्भ होगा, वैज्ञानिक उसे नहीं रोक सकेंगे; क्योंकि उनकी उत्पत्ति एवं संचालनमें हमारा कोई हाथ नहीं है और ऐसे-ऐसे अनन्त सौरमण्डल हैं, अनन्त आकाश-गङ्गाएँ हैं। प्रकाश एक सेकण्डमें १,८६,००० मील चलता है। आज पृथ्वीको उत्पन्न हुए अरबों वर्ष हो चुके; परंतु ऐसे भी तारागण हैं, जहाँसे प्रकाश अभीतक हमारी पृथ्वीपर आ नहीं सका और न सम्भवतः, जबतक पृथ्वी जीवित है, आ ही पायगा। ये सब सौरमण्डल, ये सब आकाश-गङ्गाएँ और ये सब तारागण एक दिन नष्ट होंगे, ऐसा वैज्ञानिकोंका ही मत है। तो फिर पृथ्वी कैसे बच रहेगी? और कैसे बचेंगे पृथ्वीके राष्ट्र, जाति, वंश और वैज्ञानिक? मृत्यु निश्चित है, विनाश निश्चित है। तो फिर संसार दुःखमय, असत्य और मिथ्या ठहरा। इस संसारमें मृत्यु ही सत्य है, मृत्यु ही अन्तिम नियति है; परंतु मृत्यु दुःखरूप है। अतः वह न तो सत्य ही हो सकती है, न अन्तिम नियति ही। सत्य कोई ऐसा ही तत्त्व हो सकता है जो मृत्यु और दुःखसे परे हो, जो आनन्दरूप हो। यदि कोई ऐसा तत्त्व है तो उसीको हम 'ब्रह्म' कहते हैं।

जो नाशवान् है, वह सत्य नहीं हो सकता। वह सब स्वप्न है। जो परिवर्तनशील है, वह सत्य नहीं हो सकता। वह सब स्वप्न है। जो बीत चुके वे भोग, वे प्रियजन, वे सुख-दुःख हमारे लिये स्वप्नवत् ही हैं। जो होगा, उसके भी हम केवल स्वप्न देखते हैं। जो वर्तमान है, वह भूत बनता जा रहा है। अतः वह भी स्वप्न बनता जा रहा है। अतः संसार

स्वप्न है, माया है, मिथ्या है। अमरीकी कवि वाल्ट* ह्विटमैनने अपनी एक कवितामें प्रश्न किया है 'कि जब संसार माया है तो फिर यह पूजा-पाठ, आराधना, धार्मिक कृत्य भी माया हैं, मिथ्या हैं।' ऐसा तर्क और बहुत-से लोग भी करते हैं। संसारको जो मिथ्या कहा गया है वह सुख-दुःख, मानापमान, जय-पराजय आदि फलकी अपेक्षासे, न कि कर्मकी अपेक्षासे। कर्मकी अपेक्षासे तो आद्य शङ्कराचार्यने स्वप्नको भी सत्य माना है। उनके अनुसार स्वप्नमें किये हुए कर्म भी बन्धके कारण हैं (छान्दोग्योपनिषद् शंकरभाष्य ६।८।१; ८।५।३)। लोकमें भी हम ऐसा बोलते हैं। एक कामुक व्यक्ति, एक अर्थार्थी, लोभी मान-अपमानको मिथ्या मानते हैं। उनकी दृष्टि अपने लक्ष्यपर रहती है। स्वातन्त्र्य-संग्राममें हमलोग भी कष्ट, पीड़ा, यातनाको मिथ्या मानकर चलते थे। सन् १९४२में मुरादाबादमें गोली चली। ५ व्यक्ति मारे गये। मैं वहींपर था। अगले वर्ष पं० जवाहरलाल नेहरू मुरादाबाद आये। उनके आगे उन ५ व्यक्तियोंके मारे जानेका उल्लेख हुआ। पंडितजीने कहा, 'यह सब निस्सार है कि कौन मरा और कितने मरे। मृत्युपर अफसोस होता ही है, परंतु हमें तो केवल यह देखना है कि इन बलिदानोंसे हमारी स्वराज्यकी लड़ाई कितनी आगे बढ़ती है।' ठीक इसी अपेक्षासे हमें संसारको समझना है। हम अपने प्रत्येक कर्मसे कितना ईश्वरके निकट पहुँचते हैं या उससे दूर हटते हैं, यही सत्य है। और हम अपने प्रत्येक कर्मसे संसारको कितना अपनी ओर खींचनेमें समर्थ होते हैं, यह सब मिथ्या है। गाँवमें रास-मण्डलीवाला कहता है कि कितने लोग साँग देखने आये, यह मिथ्या है। कितना पैसा आया, यह ही सत्य है। साहित्यमें भी ऐसी कसौटियाँ चलती हैं। एक लेखक अपनी सफलताकी कसौटी कितने लेख छपे, इसे मानता है। दूसरा इसे मिथ्या ठहराते हुए कितना धन और यश प्राप्त हुआ, इसे सत्य मानता है। लेखनद्वारा अपार धन और यश अर्जित करनेवालोंमें कई ऐसे हैं, जिन्होंने बहुत कम लिखा। नोबेल पुरस्कार विजेता इलियट एक ऐसे ही साहित्यकार थे। गालिबको जो स्थान आज उर्दू साहित्यमें प्राप्त है वह असाधारण है, परंतु उनका कुल उर्दू काव्य केवल १८०० पंक्तियोंका है। जैनाचार्य मानतुङ्ग, 'जिनका' आदिनाथ स्तोत्र प्रत्येक जैनघरानेमें पढ़ा जाता है, कुल ४८ ही श्लोकोंके रचयिता हैं। एक तीसरे व्यक्ति धन, यश और लोकप्रियताको भी मिथ्या ठहराते हुए केवल इसीको सत्य मानते हैं कि किस लेखककी कृतिने इतिहासको कहाँतक प्रभावित किया। इस कसौटीसे कुछ लोग गालिबको भी मिथ्या ठहराते हैं; क्योंकि अत्यन्त लोकप्रिय होते हुए भी उनका समाज एवं इतिहासपर कोई प्रभाव नहीं है। इस प्रकार हम सभी जीवनको मापनेमें अपनी एक चेतन या अचेतन कसौटी रखते हैं और उसपर ही अपनी सफलता या असफलताको परखते हैं। प्रश्न यह कि वह कसौटी कौन-सी होनी चाहिये। ब्रह्मवादियोंकी दृष्टिमें वह कसौटी 'आध्यात्मिक विकास'की है। अन्य सब कसौटियाँ मिथ्या हैं। साहित्यको भी ब्रह्मवादी इसी कसौटीपर कसेगा। जो साहित्य अध्यात्मकी ओर अग्रसर करनेवाला हो वह सत्य है। शेष सारा साहित्य मिथ्या है। या उतने ही अंशोंमें सत्य है, जितनेसे अध्यात्मका मार्ग प्रशस्त होता हो।

कुछ लोग 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' को निराशावादका संदेशवाहक मानते हैं, परंतु बात उल्टी है। ब्रह्मवाद ही सच्चा आशावाद है। कोई व्यक्ति स्वप्नमें अपनेको अथवा अपने प्रियजनोंको कष्टमें पड़ा देखकर यदि दुखी हो रहा हो और उसे कोई स्वप्नमें यह बतला दे कि यह सब स्वप्न है, मिथ्या है, तो आप बतलाइये उसने निराशाका संचार किया या आशाका। इसी प्रकार इस जाग्रत् संसारमें दुःख-शोकमें डूबे हुए लोगोंको यह समझाना है कि यह सब मृत्यु-विनाश मिथ्या है। अविनाशी आनन्दका जो स्रोत है, वह कभी नष्ट नहीं होता। वह सबके निकट है और सबको सुलभ है तथा वही सत्य है। यह ज्ञान नयी आशा और नये उत्साहको जन्म देता है या निराशा और अकर्मण्यताको? और जब हम सांसारिक दुःख, पराजय और अपमानको मिथ्या मानेंगे तो यहाँके पदार्थोंसे मिलनेवाले सुख, विजय और यशको भी मिथ्या मानना पड़ेगा। ऐसा माननेमें भी कोई निराशा नहीं है। सुखका अभाव दुःख नहीं है। जबतक राग है, तभीतक सुखका अभाव दुःख है। रागके नष्ट होते ही सुखका अभाव दुःख नहीं, आनन्द है। जो सुख-दुःख दोनोंसे परे है, वही आनन्द है। वह किसीकी अनुकूलता-प्रतिकूलता, भोग्य पदार्थोंकी प्राप्ति-अप्राप्ति, जीवन-मरणके अधीन नहीं है। 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' कहनेका यही अभिप्राय है।

* ह्विटमैनने अंगरेजी कवितामें 'माया' शब्दका ही प्रयोग किया है। अंगरेजी कोषकारोंने भी माया शब्दको स्वीकार कर लिया है।

नैतिक ह्रासके तीन मुख्य कारण

(लेखक—श्रीअगरचन्दजी नाहटा)

वह तो सर्वविदित है कि भारत जो किसी समय दूसरे देशोंके लिये गुरुपदके लिये योग्य था, आज उसका नैतिक स्तर बहुत गिर गया है। दूसरे देशोंने विज्ञानमें जो घुड़दौड़ लगायी है, उसका मुकाबला तो भारत कर ही नहीं सकता। पर आध्यात्मिक क्षेत्रमें भारतने जो गौरवशाली पद प्राप्त किया था, उसमें भी वह पश्चात्पद होने जा रहा है। यह अवश्य ही बड़ी चिन्ताका विषय है। नामके लिये तो आज भी बहुत-सी अध्यात्मकी बातें बतायी जाती हैं, पर जीवनमें वे दिखायी नहीं देतीं। तब थोथी बातोंसे कोई उसे 'जगद्गुरु' माननेको तैयार नहीं हो सकता।

वैसे तो अच्छाइयाँ और बुराइयाँ सब समय रही हैं और आज भी हैं। अतः कोई नयी बात नहीं है; पर उनके परिमाणमें बहुत अन्तर आ गया है! यहाँके लोगोंका जीवन नीति, धर्म और अध्यात्ममय था। बुरे व्यक्ति कम थे और अच्छे व्यक्ति अधिक थे। आज उससे उल्टा हो गया है। अब अच्छे व्यक्ति विरले रह गये हैं। अधिक संख्यामें अनैतिकताका ही बोलबाला है। गाँधीजीने भारतका मान बढ़ाया था। वह भी उन्हींके अनुयायियोंद्वारा समाप्त-सा हो गया है! पग-पगपर गाँधीजीका नाम लिया जाता है, पर उनके आचरित और बताये हुए मार्गको जीवनमें नहीं अपनाया जाता। अभी गाँधी-शताब्दी मनायी गयी है। लाखों रुपये खर्च किये गये हैं, हजारों लेख लिखे गये और लिखे जा रहे हैं। सैकड़ों पुस्तकें प्रकाशित होंगी। जगह-जगह सभाएँ और भाषण हुए हैं तथा होंगे, पर गाँधीजीके बताये हुए ११ व्रतोंके पालनकी प्रतिज्ञा कितने आदमी लेंगे, यह हम सभी जानते हैं। प्रतिज्ञा लेनेवालोंमें भी कितने निभा पायेंगे, यह तो और भी अधिक विचारणीय है।

सभी लोग कहते हैं कि भारतमें अनैतिकता दिनोंदिन बढ़ती जा रही है और उसे कम करने और दूर करनेके लिये भाँति-भाँतिके सुन्दर आन्दोलन आदि चलाये जा रहे हैं, पर जबतक नैतिक ह्रासके मूल कारणोंपर गम्भीरतासे विचार नहीं किया जायगा, नैतिकताका प्रसार हो ही नहीं सकता। मेरी रायमें कई कारणोंकी ओर तो हमारा अभी ध्यान ही नहीं गया है। इसलिये प्रस्तुत लेखमें इस सम्बन्धमें अपने कुछ विचार संक्षेपमें ही प्रकाशित कर रहा हूँ।

सबसे पहले दो बातोंकी ओर हमारा ध्यान जाता है। एक तो असाधारण महँगाई और दूसरा धनकी प्रतिष्ठा। भारतमें तो आजतक इतनी महँगाई लाखों-करोड़ों वर्षोंके इतिहासमें कभी नहीं हुई। मेरे देखते-देखते वस्तुओंके दाम १०–२० गुने ही नहीं, कइयोंके तो इससे भी अधिक हो गये हैं। सबसे पहले मनुष्यको अन्नकी आवश्यकता होती है। गेहूँ तो मेरे देखते-देखते २)-२।।) रुपये मन था, वह ५०)-६०) रुपये मनतक हो गया है। इसी तरह अन्य वस्तुओंके भी भाव समझिये। फलतः जहाँ ४)-५) रुपये महीनेमें मनुष्य अच्छी तरह गुजर कर लेता था, आज ५०)-६०) से कम तो खाने का भी खर्च नहीं होता। वैसे धनकी प्रतिष्ठा पहले भी थी, पर सदाचारी धार्मिक त्यागी व्यक्तियोंको इससे अधिक सम्मान प्राप्त था। धनवानोंमें जो खूब दान-पुण्य करते थे, वे ही समाजमें आदरणीय माने जाते थे। आज अनैतिक आचरण करनेवाले धनियोंको सबसे अधिक सम्मान मिल रहा है! सदाचारी और धार्मिक त्यागी व्यक्तिकी कोई पूछ नहीं! तब स्वभावतः सभी अधिकाधिक धन कमानेका प्रयत्न करेंगे ही; क्योंकि समाज और देशमें धनकी इतनी अधिक प्रतिष्ठा बढ़ गयी है कि अन्य सभी गुण गौण हो गये हैं। विद्वान् भी धनिकोंके गुलाम-से हो

गये हैं। बड़े-बड़े नेता भी उन्हींके सम्मानमें जुटे रहते हैं।

नैतिक ह्रासके मुख्य कारणोंमें पहला कारण है—नैतिक और धार्मिक शिक्षाका अभाव। करोड़ों बालक-बालिकाएँ हजारों विद्यालयोंमें पढ़ते हैं। उनको और तो अनेक ऐसे विषयोंका भी शिक्षण दिया जाता है, जिनका शायद जीवनमें अधिक उपयोग नहीं होता। पर जीवन-निर्माण-कार्य—नैतिक और धर्मशिक्षा उन्हें नहीं दी जाती। इससे वे उच्छृङ्खल, दुर्व्यसनी, विलासी, फेशनेबल बने जा रहे हैं। अतः उनका खर्च बहुत बढ़ गया है। उनमें विनय और विवेककी मात्रा तो बहुत ही घट गयी है।

दूसरा कारण है—सिनेमाका बिगड़ा हुआ स्तर। लाखों व्यक्ति प्रतिदिन अपनी गहरी कमाईका पैसा सिनेमा देखनेमें खर्च करते हैं। क्षणिक मनोरञ्जन तो होता है; पर जीवनमें उसका बहुत बुरा और गहरा असर होता है। शृङ्गारिक प्रदर्शन और फिल्मी गाने छोटे-छोटे बालक-बालिकाओं और युवाओंके जीवनको बर्बाद कर रहे हैं। देशका दुर्भाग्य है कि हमारे कई नेता और अच्छे कहे जानेवाले व्यक्ति सिनेमामें चुम्बन और अश्लील प्रदर्शनको भी बढ़ावा दे रहे हैं। अनेक तरहकी चोरियों, डकैतियों और पापाचारोंकी सहज शिक्षा चल-चित्रोंसे मिल रही है। सिनेमाके गीतोंका नित्य रेडियोसे खुलकर प्रसार होता है। भावी पीढ़ीका भगवान् ही मालिक है!

तीसरा कारण है—अश्लील-प्रायः कहानी, उपन्यास आदि साहित्यका अधिकाधिक प्रचार। मैंने कई कहानी-संग्रह और उपन्यास, साप्ताहिक मासिकपत्रतक ऐसे पढ़े हैं, जिनमें खुला कामोत्तेजक मसाला है। जासूसी उपन्यासोंसे चोरी और डाकूपन आदि बुरी शिक्षाएँ सहज ही मिल जाती हैं। इस तरहके साहित्यको हम खूब रुचिसे पढ़ते हैं। जनरुचि इतनी विकृत हो चुकी है कि भविष्य अन्धकारमय नजर आता है। ऐसे और भी अनेक कारण बतलाये जा सकते हैं। उपन्यासादिसे सुरा एवं सुन्दरीका आकर्षण बढ़ता है। पाठकोंके मनमें विलासिताके विचार भर जाते हैं। इस प्रवाहके रोक-थामकी बहुत ही आवश्यकता है।

आजके मनुष्योंमें स्वार्थ और लोभकी वृत्ति इतनी बढ़ गयी और बढ़ती जा रही है कि समाज, धर्म, देश एवं राष्ट्रकी हानि उसके सामने कुछ भी नहीं है। केवल अपनी स्वार्थ-सिद्धिकी धुन लगी हुई है। अतः अत्याचार, द्वेष, हिंसा, अनाचार एवं अन्यायका आश्रय लेकर भी अधिकाधिक धन तथा पद प्राप्त करनेकी होड़-सी लग गयी है। इन सब बातोंके उदाहरण नित-नये सुनने और जाननेको मिलते हैं। देशमें घूसखोरीका बोलबाला है। राष्ट्रीय कामोंमें भी स्वार्थसिद्धिका ही उद्देश्य रहता है। चुनावोंमें लाखों रुपये अन्धाधुन्ध खर्च होते हैं और वे करोड़ोंकी कमाईके उद्देश्यसे ही! मध्यमवर्गकी दशा बहुत ही शोचनीय होती जा रही है। यदि ऐसी ही स्थिति चलती रही तो राष्ट्रके लिये बहुत बड़ी बदनामी और गौरव-हानिकी बात होगी। राष्ट्र-प्रेम और आत्मीयताकी वृद्धि तथा धर्म और सदाचारकी प्रवृत्तिके लिये शीघ्र ही ठोस कदम उठाये जाने आवश्यक हैं। राष्ट्रके भावी कर्णधार विद्यार्थीमें भी तोड़-फोड़, उच्छृङ्खलता और अनैतिक वृत्तियाँ बढ़ती जा रही हैं। यह भविष्यके लिये बहुत ही चिन्ताका विषय है। समस्त राष्ट्रप्रेमियोंको सजग होकर इस स्थितिके सुधारका पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये। चारित्रिक ह्रास राष्ट्रके लिये सबसे बड़ा विनाश है। मनुष्यमें मानवताके जो सद्गुण विकसित तथा वृद्धिंगत होने चाहिये, वे अधिकाधिक कैसे पनपाये जा सकते हैं। इस विषयपर सभी विचारकोंको अपने मन्तव्य प्रकाशमें लाने चाहिये। संतों तथा विद्वानोंको मार्गदर्शन देना चाहिये एवं राष्ट्रकी भयावह स्थितिके सुधारमें सक्रिय भाग लेना चाहिये।

इतने दिन मुझे क्यों घुमाया ?

[कहानी]

(लेखक—डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

महर्षि धन्वन्तरिकी पीठमें एक बड़ा घाव हो गया। ऐसा घाव, जिसे वे अपनी समस्त प्रतिभा और बुद्धिसे मिटा न सके।

वे स्वयं बड़े प्रख्यात चिकित्सक और आयुर्वेदके अनुभवी विद्वान् थे। जीवनपर्यन्त चिकित्सा-शास्त्रकी सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक शिक्षा देते और नयी-नयी खोजें करते रहते थे, किंतु हाय, वह घाव अपनी पूरी शक्ति लगाकर भी वे ठीक न कर पाये। घावमें लगातार पीब और रक्त आता रहा, जिसे आधुनिक भाषामें कैंसर कहते हैं। इसी प्रकारके जीर्ण घावसे वे परेशान और उद्विग्न रहने लगे।

पीठमें असह्य पीड़ा थी। कभी-कभी तो वे मृत्युके दुःखद स्वप्न देखने लगते। यह कैसा विकट फोड़ा है। कैसे ठीक होगा, कहीं कोई घातक दुर्घटना न हो जाय।

वे सोच रहे थे, 'मुझमें चिकित्सा-विज्ञानकी इतनी मौलिक प्रतिभा है। लोग मुझे अपने युगका सर्वोत्कृष्ट चिकित्सक कहकर सम्मान करते हैं। महान् पुरुषोंकी इस जन्मभूमि भारतमें सर्वत्र मेरी इतनी प्रतिष्ठा है। मैं दूसरोंको स्वस्थ करनेका दम भरता हूँ और मैंने अनेक असाध्य रोगियोंको स्वस्थ किया भी है। फिर क्या कारण है कि मैं चिकित्सक होकर स्वयं अपने ही शरीरको स्वस्थ नहीं कर पा रहा हूँ। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका साधन मनुष्यका शरीर हैं। मुझे शरीर-रक्षाके लिये कुछ करना चाहिये। रोगरहित शरीर ही तो सर्व सुखोंका मूल है। यदि जीवन है तो जहान है। बिना स्वास्थ्यके संसारमें आनन्द कहाँ ?'

'फिर क्या किया जाय ?'

उनकी अन्तरात्माने झकझोरकर उन्हें जगाया, 'धन्वन्तरि ! तुझमें नयी-नयी चिकित्सा करनेकी अद्भुत प्रतिभा है। तूने असाध्य रोगोंको ठीक करनेमें अपना जीवन लगाया है। नयी जड़ी-बूटियोंको खोजनेमें तथा उनके गुण परखनेमें जीवनकी श्रेष्ठता और सफलता मानी है, फिर क्यों निराश होता है ? अपने पीठके घावको ठीक करनेके लिये किसी नयी चमत्कारी जड़ी-बूटीकी खोज कर !'

यह सोचकर महर्षि उठ बैठे। अपना सामान एक थैलेमें रक्खा। डंडा हाथमें ले वन-वन नयी जड़ी-बूटियोंका अन्वेषण और परीक्षण करने लगे। वे उन्हें कूट-पीसकर घावपर लगाते और घावपर उनका प्रभाव देखते।

उन्होंने अनेक नयी-नयी जड़ी-बूटियोंकी परख की। अजीब प्रकारके पेड़-पौधों, जड़ों और फलोंकी परीक्षा की।

उपकारी ओषधिकी खोजमें उन्होंने दूर-दूरतक भ्रमण किया। वन-वन मारे फिरे। पाँवोंमें काँटे चुभे, हिंस्र पशुओंके खतरोंको सहा। मरते-मरते बचे। पर्वतों-पर चढ़ते-चढ़ते उनके पाँवोंकी मांसपेशियाँ थक गयीं। सरिताओंके तटपर लगे हरे-भरे प्रदेशोंकी सैर की और नये वृक्षोंके पत्तों और छालोंका घावपर प्रयोग किया।

वे थककर बैठ जाते, पर उनकी अन्तरात्मा कहती, 'धन्वन्तरि ! बस थक गया ! कठिनाइयोंसे पराजित हो गया ! यह वनस्पति-विज्ञान अभी चमत्कारोंसे भरा है। फिर साहस कर। हिम्मतसे फिर नयी खोज कर। तू एक दिन सफलमनोरथ होकर रहेगा।'

इस प्रकारकी प्रेरणासे चिकित्सक धन्वन्तरि फिर उठकर चलने लगते। भूख और प्यासकी परवा

न करते। थकान भूलकर कठिनाइयोंसे पुनः संघर्ष करने लगते।

जो संघर्ष करता है, उसके मार्गसे कठिनाइयाँ स्वतः हटती जाती हैं। सही प्रकारसे श्रम करनेसे उन्नतिका रास्ता साफ होता जाता है।

धन्वन्तरि अपना धैर्य न छोड़ते थे। कुछ-न-कुछ किये जाते।

पर मनुष्यके श्रम और संघर्षकी एक सीमा है। एक हदपर पहुँचनेके उपरान्त उसे फिर सोचना-विचारना पड़ता है कि वह क्या करे? क्या अपनी योजनामें कोई परिवर्तन करे?

वे अपने घरकी ओर लौटे आ रहे थे। थके-हारे बहुत महीनोंतक दूर-दूरतक घूमकर अपने आश्रमके समीप पहुँच रहे थे। बस, उनका आश्रम दो-तीन मीलके फासलेपर दीखता था। वे पर्वतपर बैठे सोच रहे थे।

अचानक एक ओरसे आवाज आयी—'मैं आपसे ही कह रही हूँ।'

'कौन बोल रहा है, इस पर्वतीय प्रदेशमें?'

'आप इधर-उधर आश्चर्यसे क्या देख रहे हैं? आपसे ही तो कह रही हूँ।'

धन्वन्तरिने विस्फारित नेत्रोंसे चारों ओर देखा, पर कोई मनुष्य नजर न आया।

'भगवन्! मैं ही आपके रोगकी ओषधि हूँ।'

'कौन हो तुम?'

'मैं एक जड़ी हूँ।'

'तुम किधर हो? मुझे तो दिखायी नहीं देतीं? फिर बोलो।'

'भगवन्! अपने पास ही देखिये। मैं ही आपके रोगकी ओषधि हूँ। मेरा उपयोग घावपर करके देखिये।'

महर्षिने देखा, उनके समीप ही उगी हुई एक जड़ी बोल रही थी—'मैं ही आपके घावको ठीक कर सकती हूँ।'

'ओफ! तो क्या तुम सच कहती हो।' आश्चर्य-मिश्रित हर्षसे ऋषि बोल उठे।

'हाँ, हाँ, इसमें चौंकनेकी क्या बात है। मेरा प्रयोग तनिक अपने घावपर करके तो देखिये। जीर्ण घावोंको मैं ही आराम कर सकती हूँ। चिकित्सकोंको मेरा पता ही नहीं है। आपने श्रम और लगनसे घूमकर मुझे मुग्ध कर लिया है। आपके संघर्षके कारण ही मैं आपपर दया करके प्रकट हुई हूँ।'

'अच्छा लाओ, तुम्हारे पत्तोंका प्रयोग घावपर करके देखता हूँ।' महर्षिने अपने घावपर उस जड़ीको लगाया।

जादूकी तरह था उसका चमत्कारी प्रभाव! जड़ीको पीसकर लगाते ही फोड़ा ठीक होने लगा। उसकी मवाद धीरे-धीरे निकल गयी और धन्वन्तरिको लगा कि कैंसरकी यही दवा थी। अहह! कितना बड़ा अनुसंधान था! जीर्ण फोड़ेकी ऐसी अमृतोपम ओषधि! कितनी जल्दी उसका गुणकारी प्रभाव अनुभव होने लगा। उन्हें रह-रहकर लगा कि इस खोजके बिना तो उनका आयुर्वेदसम्बन्धी ज्ञान अधूरा ही था। इसकी खोज उनके जीवनकी एक स्थायी खोज थी, जिसपर एक वैद्यको सच्चे अर्थोंमें गर्व हो सकता है। कठिनाइयाँ तो बहुत आयीं, पर इस अद्भुत जड़ीकी खोज मिलनेसे उन्हें आत्मसंतोष हुआ। वे इतने दिनोंकी थकान और पीड़ाको भूल गये।

धन्वन्तरि आश्चर्यसे बोले—'तुम इतनी चमत्कारी जड़ी हो। मेरे चिकित्सा-विज्ञानमें तुम एक अनुपम खोज हो। तुम्हें खोजकर मैं आयुर्वेदको एक नयी चीज दे रहा हूँ। तुम्हारे उपयोगद्वारा असंख्य भूले-भटके दुखी रोगियोंको लाभ पहुँचेगा। पीड़ित मानवताकी सेवा होगी। पर····पर····।'

जड़ीने पूछा, 'पर····पर क्या कहना चाहते हैं महर्षि?'

'एक शङ्का मनमें उभर आयी है ?'

'कहिये, मैं यथासम्भव उसका निराकरण करूँगी।'

'तुम तो मेरे आश्रमके समीप ही थीं। मैं तुम्हारी खोजमें वन-वन, पहाड़ और सरिताओंपर मारा-मारा फिरा.... अबतक तुम क्यों न बोलीं ? इतने दिन मुझे व्यर्थ क्यों घुमाया....? यह देखो, चलते-चलते मेरे पाँवोंमें छाले उभर आये हैं। शरीर थकानसे भर गया है। श्रम और संघर्षसे टूट-फूट चुका हूँ।....बोलो! बोलो! इस बूढ़े शरीरको क्यों पथ-पथका घुमक्कड़ बनाया ?'

जड़ी पहले तो चुप रही।

फिर लजाती हुई बोली, 'महर्षि! इधर-उधर खोजनेमें वास्तवमें आपको बड़ा कष्ट पहुँचा। आपको बड़ा श्रम करना पड़ा है। कठिनाइयोंसे बड़ा संघर्ष करना पड़ा है।'

'तुम्हें मुझपर दया नहीं आयी ?'

'आपको जीवनका एक सत्य सिखाना था।'

'मुझ-जैसे वृद्धको भी कुछ सीखनेको बचा था क्या ?'

'हाँ, हाँ, सीखनेकी क्रिया तो जीवनके अन्तिम दिन-तक चलती रहती है। जिसने सीखनेका काम छोड़ दिया, जिसने ज्ञानकी इतिश्री समझ ली, वास्तवमें वही बूढ़ा है। इस दृष्टिसे आप तो जवान हैं।'

'फिर क्या है वह जीवनका चरम सत्य ?' ऋषिने उत्सुकतापूर्वक पूछा। जड़ीने कहा, 'क्षमा करना भगवन्! यदि अनायास ही मैं आपको प्राप्त हो गयी होती, तो नयी-नयी ओषधियोंका शोध-कर्म आप कहाँ कर पाते ? श्रम और संघर्षके अभावमें कैसे आपका जीवन निखर पाता ?'

ऋषि निरुत्तर हो गये।

यों कुटेव मिटती है

[सच्ची कहानी]

(लेखक—श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)

अर्द्धरात्रि। आकाश मेघाच्छन्न। धीरेसे कपाट खटखटाते हुए पुकारा उसने—'राधा!'

राधा भगवन्नामकी माला जपकर सोयी ही थी कि पुकार सुनकर किवाड़ खोले और सामने ही हीरा-को देखकर बोली—'अरे भाई हीरा! इतनी रात-बीते कहाँसे आया ?'

'धीरे बोल'—यह कहते हुए हीराने सिरपरकी गठरी नीचे उतारी और उसमेंकी कई मूल्यवान् वस्तुओं-को दिखाते हुए बोला—'बहन राधा! यह ले, हीरे-मोतियोंकी चूड़ियाँ; नाक, कान, बाँह, हाथ, पाँवके रत्नोंसे जड़े सोनेके गहने; सच्चे गोटेके लुगड़े, घाघरे, साड़ियाँ, चोली आदि। तू इनको पहनना।'

राधा चौंककर कहने लगी—'अयँ, इन्हें तू लाया कहाँसे ?'

'अभी कामनाथ सेठके घरसे चोरी करके सीधा तेरे घर आया हूँ। सेंध लगायी तो सब अचेत सो रहे थे। मैंने भी जादू कर दिया था। मजेमें सब बटोर-कर ले आया हूँ। तू डरती क्यों है ? इन्हें ले ले, खूब पहनना-ओढ़ना। तुझसे कोई कुछ नहीं कहेगा।' हीराने अपनी सफलतापर प्रसन्न होते हुए कहा।

'ना, भाई! यहाँ गाँवमें यदि मैं इन्हें पहनूँगी, तो सभी लोग पूछेंगे और चोर समझकर हमें कोतवालीमें रख देंगे। हम यहाँ इज्जतदार भले आदमी हैं। मैं इन वस्तुओंको कदापि नहीं छूँगी। तू जहाँसे इन्हें लाया है वहीं जाकर, तुरंत रखकर, आ।' राधाने भयभीत स्वरमें काँपते हुए कहा।

'तू तो पगली है। हमारा तो यह नित्यका काम

है। इसी पेशेसे घरके सभी खर्च चलते हैं। यदि इस कामको छोड़ दें, तो भूखों मर जायँ। खेती-किसानी तो हम केवल दिखावेके लिये करते हैं। अति-वृष्टि अथवा अनावृष्टिसे फसल चौपट हो जाती है, तो हमलोग उसकी जरा-सी भी परवा नहीं करते। देख, हमलोग ऐसे चतुर हैं कि पुलिसकी पकड़में भी नहीं आते। तू इन वस्तुओंको छिपाकर रख ले। फिर समय देखकर इनमेंसे थोड़ी-थोड़ी पहनना।'

हीराने निर्भयताके साथ मनमें उल्लास भरकर राधाको समझाते हुए कहा।

राधाको तो वे सब चीजें विषधर सर्पके बच्चेके समान दिखायी दे रही थीं, मानो हाथ लगाते ही डँस लेंगी। उसने हाथ जोड़कर कम्पित स्वरमें कहा—'भाई हीरा! तू यदि अपनी बहनका भला चाहता है, तो इन्हें यहाँसे तुरंत ले जा। मेरे घरके अन्य व्यक्ति जाग उठेंगे तो न जाने क्या-क्या शङ्काएँ करेंगे। हम गरीब लोग हैं भाई, जो कुछ दाल-दलिया मिलता है, उसीसे गुजारा कर आबरूके साथ रहते हैं।'

जब राधा बहुत गिड़गिड़ायी एवं रोने लगी, तब हीरा गम्भीर होकर बोला—'तू कैसी गरीब है ? तेरी चक्कीके नीचे धन गड़ा हुआ है। तू कहे, तो अभी निकालकर बता दूँ ! हमलोग सब जान लेते हैं।'

'हाँ रे भाई, होगा; किंतु इस समय तो तू यहाँसे चला जा।' राधाने प्रार्थना करते हुए हाथ जोड़कर कहा।

'अच्छा, तू डर गयी है, तो मैं जाता हूँ। तेरे बड़े पुत्रका विवाह हो, तब मुझे निमन्त्रण देना। मैं तेरे लिये बढ़िया-से-बढ़िया मौसाला लेकर आऊँगा। मौसालेके बहुमूल्य वस्त्राभूषण देखकर परगनेके लोग तेरी वाहवाही करेंगे और मुझ भाईकी प्रशंसा।' हीरा चला गया।

× × ×

राजस्थान—जिला झालावाड़के समीप एक गाँवमें राधाके यहाँ किसानीका धंधा होता था। गाँवसे कुछ दूर झोंपड़ियाँ बनाकर जरायम पेशा लोग रहते थे। उन्हींमें-से था—हीरा।

सभी जानते थे कि हीराने राधाको धर्मकी बहन बनाया था। वह प्रायः राधाके घर आता-जाता था। राधा जानती थी कि 'यह पक्का चोर है। कभी मुझे धोखा देकर चक्कीके नीचे गड़ा धन और हमारे दुधारू पशु ले जायगा। प्रभु ! मुझे ऐसी शक्ति दीजिये कि मैं इसे समझा-समझाकर इसकी यह कुटेव मिटा सकूँ।'

एक दिन हीरा राधाको स्वर्णमुद्राएँ देने आया। राधाने लालचमें आकर ज्यों ही स्वर्णमुद्राएँ लेनेको हाथ बढ़ाया, त्यों ही मानो उसके अन्तर मनने रोक दिया। वह तत्काल हाथ हटाकर बोली—'अभी तो इन्हें रख। तेरे राखी बाँधने आऊँ, तब देना।' हीरा राधा बहनकी स्वीकृति सुनकर मन-ही-मन प्रसन्न होता हुआ घर चला गया।

कुछ दिनोंके पश्चात् हीरा राधाकी बीमारीका हाल सुनकर उसकी कुशल पूछने आया। उसके शरीरके सफेद चकत्ते देखकर राधाने साश्चर्य पूछा। 'इसका हाल मत पूछ बहन ! वह कष्ट याद आते ही कलेजा दहल जाता है। एक सेठके यहाँ चोरी करने गया था। उनके यहाँ विवाहकी धूम थी। मैं अवसरकी ताकमें मोरीमें छिपा रहा। उन्होंने पकाये चावलोंका माँड उसी मोरीमें बहाया। उसके लगनेसे मेरे शरीरका सारा चमड़ा जल गया; किंतु पकड़ा जानेके भयसे मैंने चूँ भी नहीं की। उसी मोरीमें तीन दिनतक प्राणान्त कष्ट सहते हुए भूखा-प्यासा चुपचाप बैठा रहा। जब विवाहकी धूमधाम कम हुई, तब निकलकर सीधा घर गया और छः मास इलाज करते रहनेपर अब कुछ ठीक हुआ हूँ।' हीराने अपनी बीती कष्ट-कहानी राम-राम कहते सुनायी।

'ओहो, तब तो भाई ! इस तस्करी धंधेको आज ही तिलाञ्जलि दे दें ।' राधाने मानो मर्मान्तक पीड़ा अनुभव करते हुए ये शब्द कहे ।

'बहन, यह पुश्तैनी धंधा छूट कैसे सकता है ? कष्ट सहनेके तो हम अभ्यस्त हैं । यह तो क्या, बड़े-बड़े घाव सह लेते हैं ।' हीराने दृढ़तापूर्वक कहा ।

तब राधाने अपनी रोग-शय्यापर सोते-सोते ही हीरा-भाईको ४ घंटेतक कई उदाहरण देते हुए पापकर्म-चोरीके बुरे परिणाम समझाये; और साथ ही हाथ जोड़कर बार-बार प्रार्थना की कि 'यदि तू सच्चे मनसे मुझे धर्म-भगिनी मानता है, तो मेरे कहनेसे इसी घड़ीसे इस घृणित पाप-कर्मको छोड़ दे और फिर कभी न करनेकी शपथ ले ले ।'

किंतु हीराके मनपर उस समय प्रभाव नहीं पड़ा । हाँ, उसी क्षणसे इन उपदेशोंका बीज शनैः-शनैः अंकुरित होने लगा उसके मैले मनमें ।

× × ×

मुंशी कृपारामके यहाँ मुशायरेका आयोजन खूब जमा । समाप्तिके पश्चात् जब मुंशीजी घरके अंदर गये, तो सब सामान चोरी गया पाया । उनके स्नेहवश पुलिस कोतवाल सोहनलालजी रात्रिमें ही चोरीका पता लगानेके निमित्त जीपमें बैठकर उन्हीं झोंपड़ियोंमें आये । सब मिले, केवल हीरा घरपर नहीं था । उसकी खोज हुई । लोगोंने बताया कि—"अभी तो हमलोग ढोलकपर आल्हा गा रहे थे, परंतु बीचमें ही हीरा—'तजो रे मन हरि विमुखनको संग ।' यह भजन गाते-गाते नाचने लगा था । जबसे राधाके घरसे आया है, तबसे पागल-सा हो गया है । हमें उपदेश देकर हमारे पुश्तैनी पेशेको छुड़ानेकी चेष्टा करता है । अब न जाने एका-एक कहाँ चला गया ।"

राधाके घरकी तलाशी लेनेका विचार आते ही साथियोंने कोतवालजीको समझा दिया ।

× × ×

पासकी ऊँची पहाड़ीपर वृक्ष-लताओंकी झुरमुटमें एक टूटे-फूटे शिव-मन्दिरमें एक भक्त शिव-नामकी माला कई महीनोंसे जप रहा है । तन क्षीण, पर मन भजन-में तल्लीन । आँसुओंकी धारा शिवजीका अभिषेक कर रही है । उस हिंसक पशुओंके निवास-स्थानपर कौन जाय ! पर सुराग पाकर सोहनलाल अपने दलसहित उस पहाड़ीपर गये और चारों ओरसे मन्दिरको घेर लिया । भक्तको पुकारा, प्रश्न किये, हिलाया-डुलाया, झकझोरा; पर यह क्या, वह तो निर्जीव-सा हो रहा था । चेहरा देखा, पहचाननेकी पूरी-पूरी चेष्टा की, किंतु सभी आपसमें कह उठे—'नहीं, यह वह नहीं है—चलो ।' असफलताके कारण उदास होकर सोहनलाल सदल वापस कोतवालीमें लौट आये ।

समय जल-प्रवाहकी भाँति बहता गया । दिन बीते—कई मास बीत गये । एक दिन वही शिवभक्त राधाके यहाँ आया । राधा उसे पहचान नहीं सकी । हीराने स्वयं अपना परिचय दिया । राधा बड़े आश्चर्यके साथ बोली—'यदि तुम हीरा हो तो तुम्हारे पहले खूँखार चेहरेपर वे निर्दयताके चिह्न, हृष्ट-पुष्ट शरीर, हँसमुख, पिस्तोल, चारों ओर देखकर लुकने-छिपनेके वे भाव—सब कहाँ गायब हो गये ? अब तो तुम संत दिखायी देते हो !'

'बहन ! पहले मैं तस्करीमें पारंगत था, अब भक्तिमें लीन होकर मैंने उसका मधुर स्वाद चख लिया है । अन्तः-करण शुद्ध है, भावनाएँ निर्मल हो गयी हैं । चोरी करनेके वे काले कारनामे स्मरण आते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं । प्रभुसे वही अपराध क्षमा करानेका जप करता रहा और तेरा रोग नष्ट हो जानेकी प्रार्थना भी । आशुतोष दयालु शिवने दोनोंपर कृपा कर दी है । तू स्वस्थ है और मुझ पापीको प्रभुने शरणमें लेकर शुद्ध

तथा निर्विकार बना दिया है। यह सब तेरी शिक्षाका ही तो सुफल है।' हीराने पवित्र हृदयसे ऐसे शुद्ध-भाव डबडबाई आँखोंसे धीरे-धीरे प्रकट किये।

राधा अत्यन्त प्रसन्न होकर बोली—'धन्य है हीरा भाई! तू अब सच्चा अनमोल हीरा बन गया है। मैं भी रोग-शय्यापर पड़े-पड़े तेरा यह पापकर्म छुड़ानेके निमित्त भगवान्से अहर्निश विनीत प्रार्थना किया करती थी। भगवान्ने मेरी भी सुनी, तूने पाप-कर्म छोड़ दिया। वह प्रणतपाल किसकी नहीं सुनता? एक बार अनन्य भावसे उसकी शरणमें आ जानेकी देर है। फिर तो मानवके जन्म-जन्मान्तरोंके संचित पाप-दोष इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे रूईके ढेरको अग्निकी एक चिनगारी क्षणभरमें जलाकर भस्म कर देती है। उस प्रभुकी जय हो—जय हो।'*

धनुधारी हैं बन गये मुरलीधर भगवान्

(लेखक—श्रीमदनसिंहजी बघेल)

श्रीराम-रावण-युद्धकी समाप्तिपर विभीषणजीको लङ्काका राज्य मिला और माता सीताजीको भगवान् श्रीरामके दर्शन। तत्पश्चात् भगवान् राम अयोध्या चलनेकी शीघ्रता कर रहे हैं और वानर-भालुओंको सधन्यवाद अपने-अपने घर जानेकी आज्ञा दे रहे हैं। सहसा जाम्बवन्तजी भगवान् रामसे कह उठे—'भगवन्! युद्ध समाप्त हो गया; परंतु मेरी भुजाएँ तो अभी फड़क ही रही हैं, मैं तो थका ही नहीं।' भक्तवत्सल भगवान् मुस्कराये और कहने लगे—'अभी आनन्दपूर्वक जीवन-यापन करो, तुम्हें अवसर मिलेगा युद्ध करनेका और तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी, मैं ही स्वयं तुम्हें युद्धमें छकाऊँगा।'

समय व्यतीत हुआ। त्रेतायुग समाप्त होकर द्वापरका आरम्भ हुआ और वह भी थोड़ा ही शेष रहा, तब गोलोकवासी भगवान् श्रीकृष्ण वृन्दावन क्षेत्रमें बालक श्रीकृष्णके रूपमें अवतीर्ण हुए। धीरे-धीरे सदाकी भाँति दुष्टोंका दमन किया। साधु सज्जनोंका संरक्षण तथा उनको सब प्रकारसे सम्पन्न करके स्वयं द्वारकापुरीमें विराजित हुए। सत्राजित यादवने भगवान् श्रीकृष्णको यह झूठा कलंक लगाया कि उन्होंने स्यमन्तकमणि चुरा ली है और उनके भाई प्रसेनको मार डाला है। जब भगवान् श्रीकृष्णको यह समाचार मिला तो वे स्यमन्तकमणिकी खोजमें निकल पड़े, साथमें कुछ और यादव भी थे। खोजते-खोजते वे एक कन्दरामें घुसे, जिसमें श्रीजाम्बवन्तजी सपरिवार रहते थे। जाम्बवन्तजी उस समय सो रहे थे, उनकी पत्नीने नवागन्तुकको देखकर पतिदेवको जगाया।

अन्य पुरुष आयो प्रभु, जागो हे प्राणेश।
जाम्बवन्त तुरतहिं उठे, करि सुमिरण अवधेश॥

श्रीरामके परम श्रद्धालु भक्त अपने इष्टदेव 'अवधेश'का स्मरण करते हुए उठे और एक अपरिचित पुरुषको घरमें देखकर बड़े क्रोधित हुए और उससे मल्लयुद्ध करने लगे—

कृष्णचन्द्र कौं देखि कै, भयो भालु अति क्रुद्ध।
कर में हरि के कर गहे, करन लगौ मल्लयुद्ध॥

युद्ध देरतक चला, जाम्बवन्तजी थकने लगे। तब सहसा उनके मनमें यह भाव आया कि कहीं भगवान् श्रीराम ही तो युद्ध करने नहीं आ गये—

करि करि हारयो युद्ध जब मन में भौ कछु भान।
अहा! कदाचित् रामजी, आये हैं भगवान॥

बड़ी विकट समस्या है। युद्ध रोक नहीं सकते और जाँच भी करनी है कि विपक्षी कहीं भगवान् श्रीराम ही तो नहीं हैं। युद्ध चल रहा है और जाँच भी—

मनमोहन छबि है वही, वही मधुर मुसकान।
वही कमल-सी करतली, वे ही पद निरवान॥

* इस सच्ची कहानीके सभी नाम कल्पित हैं।—लेखक

'मनको मुग्ध करनेवाली मुखकी छटा वही है, जो श्रीरामजीकी थी; वैसी ही मनमोहक मुस्कान है इनकी; ठीक उसी प्रकारकी लाल कमल-जैसी इनकी हथेली है और वैसे ही मोक्षदायक इनके चरण हैं।' ऊपरसे नीचेतक सारे शरीरके अवयवोंकी जाँच हो गयी और जाँचमें सारे अङ्ग-प्रत्यङ्ग श्रीरामजीके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंके समान निकले। आगे भी जाँच चली—

वही पीत पट है रुचिर, कोमल वही शरीर।

पुनः देखा कि 'पीला पटुका भी वैसा ही है और शरीरकी कोमलता भी वैसी ही है।' परंतु भक्त जाम्बवान्‌को इन समस्त चिह्नोंके मिलनेपर भी एक शङ्का रही और उसीके आधारपर मनमें आया कि यह एक प्रधान अन्तर है।

पर मुरली कर बाँस की, नहीं धनुष नहिं तीर॥

'भगवान् श्रीरामके साथ सदा रहनेवाले धनुष-बाण नहीं हैं, ये तो हाथमें बाँसकी वंशी लिये हुए हैं'—अयोध्यानाथ श्रीरामके भक्तने यह शङ्का की। फिर क्या था भक्तवत्सल भगवान् मुग्ध हो गये भक्तकी भावनापर और सदा-सर्वदा भक्तकी टेक रखनेवाले भगवान्‌ने अपनी टेक छोड़ी भक्तकी रुचि रखनेके लिये, उसकी शङ्का-समाधान करनेके लिये—

देखि भाव मन भक्त को महा। विहँसे कृपानिधान।
धनुधारी हैं बन गये मुरलीधर भगवान॥

यह परिवर्तन होते ही तो सारा हृदय ही बदल गया। भक्त निहाल हो गया, सपरिवार निहाल हो गया और परमानन्दके अथाह सागरमें निमग्न हो गया—

जाम्बवन्त चरननि परथो, मेलि सुता अरु नारि।
मानू भव-बारिधि तरयो, चरन पखारि पखारि॥
गोपिन सों प्यारी हुती, जो मुरली मन चोर।
सेवक रुचि को राखने, त्यागी नन्दकिशोर॥

प्रभु! धन्य हैं। आप भक्तोंके लिये क्या नहीं कर सकते! आपने ही आगे चलकर वृन्दावनमें श्रीविहारीजीके रूपमें गोस्वामी तुलसीदासजीके कहनेपर धनुष-बाण धारण किया था। यथा—

कहा कहौं छवि आजु की भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक जब नवै, धनुष बान लेउ हाथ॥
× × × ×
मुरली मुकुट दुराय कै नाथ भये रघुनाथ।

और आपने ही धनुष-बाण धारण किया भक्त जाम्बवान्‌जी-की रुचि रखनेके लिये।

सर्वश्रेष्ठ पुरुष

(लेखक—श्रीसुरेश के० अंशुम)

एक बार भगवान् बुद्ध शिष्योंके साथ भ्रमण कर रहे थे। भिक्षुओंको सम्बोधित करते हुए तथागत बोले—'भिक्षुओ! इस विश्वमें चार प्रकारके मनुष्य हैं। एक वह, जिसने न अपना भला किया और न दूसरोंका। दूसरा वह, जिसने दूसरोंका भला किया, किंतु अपना नहीं। तीसरा वह, जिसने अपना भला किया, किंतु दूसरोंका नहीं और चौथा वह, जिसने अपना भला किया और दूसरोंका भी भला करनेका प्रयास किया है।'

'जिस व्यक्तिने न अपना भला किया और न दूसरोंका भला करनेका प्रयास किया, वह श्मशानकी उस लकड़ीके समान है जो दोनों सिरोंपर जल रही है और जिसके बीच मैल लगा है। वह न जंगलमें जलानेके काम आती है और न गाँवमें। इस प्रकारका मनुष्य न संसारके किसी कामका होता है और न अपने किसी कामका। जो अपनी हानि करके दूसरोंका भला करता है वह दोनोंमें अधिक अच्छा है, किंतु चारों प्रकारके मनुष्योंमें तो सबसे अच्छा वही है, जिसने अपने साथ दूसरोंका भी भला करनेका प्रयास किया है।'

एक झलक

(रचयिता—श्रीरामपुनीतजी श्रीवास्तव, एम्० ए०)

दिखला दो अपनी छवि अनुपम, उस अनुपम छविकी एक झलक।
बस एक झलक, बस एक झलक ॥

जिसके मृदु हास तरंगोंसे, खिंच जाता नभमें इन्द्रधनुष;
जिस पीताम्बरके धोवनसे, रंजित बन जाता मेघ-वपुष।
अनुरक्त दृगोंमें भर देता निज मोहकता जो श्याम पुरुष;
भूको सरसाता उषा-कलश, जिसकी साँसोंसे छलक-छलक।
दिखला दो तुम वह छवि अनुपम, उस अनुपम छविकी एक झलक।
बस एक झलक, बस एक झलक ॥

कटि पीताम्बर सिर मोर मुकुट, शोभन वनमाला हो उरपर;
अनुराग-मयी मधु मुरलीसे, झरता हो राग-सुधा-निर्झर।
अद्भुत छवि-छटा दिखाता हो, वर वदन तुम्हारा श्याम सुघर;
पुलकित विमुग्ध राधा रानी, सस्नेह निरखती हों अपलक।
दिखला दो तुम वह छवि अनुपम, उस अनुपम छविकी एक झलक।
बस एक झलक, बस एक झलक ॥

जिस छविको देख विषाद अतल, आनन्द-स्वर्गसे मिल जाता;
सौन्दर्य-भूख सार्थक बनती, अनुराग-कुसुम है खिल जाता।
नयनोंके अरुणिम डोरेमें, वह पीत वसन है सिल जाता;
रंगीन गुलाबी मधुर नशा, छाया रहता चिरकाल-तलक।
दिखला दो तुम वह छवि अनुपम, उस अनुपम छविकी एक झलक।
बस एक झलक, बस एक झलक ॥

पाकर जिस तनकी तेज-विभा, नभमें रवि-चन्द्र चमकते हैं;
जिस तनकी गन्ध-मधुरतासे, मधुमय वन फूल महकते हैं।
जिस श्यामल तनकी छायामें, बहु रंजित रूप झलकते हैं;
जिस छविका नीराजन करते, तारोंके आँसू ढलक-ढलक।
दिखला दो तुम वह छवि अनुपम, उस अनुपम छविकी एक झलक।
बस एक झलक, बस एक झलक ॥

मोहन, इस जगका रूप-रंग, मैं देख-देख हैरान हुआ;
बन रहा यथार्थ जहाँ सपना, हा ! अपना भी अपना न हुआ !
कितनी तृष्णा, कितनी अशान्ति, बस मृग-मरीचिका भान हुआ;
आओ, चिर-सुन्दर ! आ जाओ, मैं तुम्हें देख लूँ ललक ललक।
दिखला दो अपनी छवि अनुपम, उस अनुपम छविकी एक झलक।
बस एक झलक, बस एक झलक ॥

परमार्थकी पगडंडियाँ

हम सबपर श्रीभगवान्‌की बड़ी कृपा है। भगवान्‌की इस कृपापर सदा विश्वास रखना और इस महती कृपाके बलपर जगत्‌के सारे विघ्न-बाधाओंको हटाते हुए, सारे पाप-तापोंको समूल ध्वंस करते हुए भगवान्‌के पावन पथपर सदा बढ़ते रहना चाहिये। भगवान्‌की कृपाका भरोसा रहेगा और निर्मल निष्काम पवित्र प्रेमकी प्यास होगी तो इन्द्रिय-भोगोंकी लालसा सर्वथा समाप्त होकर परम पावन भगवत्प्रेम-सुधा-रसका असाधारण नित्यप्रवाही झरना प्राप्त हो जायगा। वह तो प्राप्त ही है; हम ही अपनी अनन्य और एकान्त आकाङ्क्षाकी कमीसे दूर हो रहे हैं।

भगवान्‌की अनन्त अपार कृपापर सदा भरोसा तथा विश्वास रखना चाहिये कि सब कुछ हमारे मङ्गलके लिये ही हो रहा है और जहाँ प्रेमका राज्य है, वहाँ तो मङ्गलका प्रश्न भी नहीं है। वहाँ तो पूर्णतया केवल अपने परम प्रेमास्पद भगवान्‌की इच्छा पूर्ण होनेमें सब कुछ है। मनमें सदा-सर्वदा प्रसन्न रहना चाहिये। विषाद-खिन्नता तमोगुणके लक्षण हैं एवं प्रसन्नता-प्रफुल्लता सत्त्वगुणके। अपने भगवान्‌को प्रसन्न देखकर सदा-सर्वदा हम प्रसन्न ही रहें।

× × × ×

बिना मनके भी तीर्थस्नान, भगवन्नाम-जप तथा संत-दर्शनका पवित्र फल होता है। तुम मनको सदाके लिये प्रभुके मधुरतम स्मृति-सागरमें डुबो देना चाहते हो सो तो सर्वोत्तम है। प्रभुके पावन चरणकमल ही सर्वश्रेष्ठतम तीर्थ हैं। बिना किसी अन्य स्मृतिके तथा बिना किसी आशा-आकाङ्क्षाके एवं बिना निज सुखकी किसी चाहके यदि कोई प्रभुके चरण-सुधा-सागरमें अपने मनको निमग्न कर दे तो उसके समान न तो कोई सुखी है, न सौभाग्यशाली है, न पुण्यवान् है, न साधक है और न प्रेमी ही है। अतएव तुम्हारी यह चाह तो बहुत उत्तम है।

भगवान्‌की बड़ी ही कृपा है। उनकी कृपाका तो कहीं कोई अन्त ही नहीं है। वे हमारी ओर, हमारे कर्मोंकी ओर देखते ही नहीं, सदा सहज कृपा ही बरसाते रहते हैं। हम यदि मान लें तो हमारे प्रत्येक कार्यको वे अपनी पूजा मान लेते हैं।

× × × ×

संसारका रूप तो सामने है, यहाँके तमाम भोगोंसे सर्वथा वितृष्णा, विरक्ति हो जानी चाहिये। किसी भी हेतुसे, किसी भी निमित्तसे संसारके भोग-पदार्थोंमें आसक्ति-ममता नहीं होनी चाहिये। भगवान्‌के निमित्तसे भी नहीं। भोगोंकी आसक्ति-ममता भगवान्‌के निमित्तको भुला देती है और अपना आधिपत्य पूरा जमा लेती है। ममता-आसक्ति सारी और पूरी भगवान्‌में ही होनी चाहिये। ऐसा होनेपर न तो किसी विषयकी कामना हो सकती है, न किसी पदार्थके न मिलनेसे या चले जानेपर दुःख होता है, न जानेका भय और चिन्ता होती है और न द्वेष होता है। मन सदा ही प्रफुल्लित तथा शान्त रहता है। विषयासक्ति तथा विषय-ममता ही बन्धन हैं और बहुत बुरी चीज हैं। इसका लेश भी नहीं रहना चाहिये।

भगवान्‌पर विश्वास होनेपर संसारकी विपत्तिसे मन डावाँडोल नहीं होता। विश्वास बढ़ाना चाहिये। जितना ही विश्वास बढ़ेगा, उतनी ही चित्तमें शान्ति आयेगी।

× × × ×

बस, इतनी ही बात है—

१–भगवान्‌पर, भगवान्‌की कृपापर सदा पूर्ण अडिग विश्वास रखना।

२—'भगवान् हमको अपना चुके हैं, हम उनके हो गये हैं, उन्हींके रहेंगे, वे हमें कभी छोड़ नहीं सकते। हम उन्हें कभी छोड़ नहीं सकते। भगवान् एक बार ग्रहण करनेपर फिर छोड़ना जानते ही नहीं।'—इस बातपर पूरा-पूरा निश्चयपूर्ण विश्वास रखना।

३—नित्य-निरन्तर भगवान्‌का मधुरातिमधुर स्मरण करना।

४—भगवान् अपनी मङ्गलमयी इच्छाके अनुसार हमें जहाँ, जैसे, जब रक्खें, उसीमें प्रसन्न रहना; क्योंकि इसीमें उनको सुख है।

५—भगवान्‌से अपने सुखके लिये कभी कुछ भी चाहना नहीं, सदा-सर्वदा उन्हींकी चाहको पूर्ण करते रहना।

६—संसारके तमाम भोगोंसे, विषयोंसे सदा वितृष्ण रहना। उनकी ओर कभी भी मन न चले, दृष्टि न जाय। बस, एकमात्र भगवान्‌के सौन्दर्य, माधुर्य तथा उनके प्रेमरस-सुधापानमें ही मन सदा मतवाला बना रहे, उसीमें संतुष्ट रहे, उसीमें रमण करे, उसीकी बात सोचे एवं उसीकी कहे।

× × × ×

संयोग-वियोग प्रभुके विधानके अधीन हैं। हम उनके लिये चिन्ता क्यों करें? उन्होंने ही संयोग दिया, वे चाहेंगे तबतक संयोग रहेगा, चाहेंगे तब वियोग हो जायगा। सब उन्हींके अधीन है। अपने तो सदा-सर्वदा उनपर निर्भर रहना है। फिर शरीरके संयोगका महत्त्व ही क्या है? महत्त्व तो आत्माके नित्य पवित्र संयोगका है। उसमें कभी वियोगकी सम्भावना है ही नहीं। इसलिये इस चिन्ताको सर्वथा छोड़ देना चाहिये और सदा-सर्वदा खूब प्रसन्न रहना चाहिये। जरा भी मनमें निराश एवं उदास नहीं होना चाहिये। शान्तिकी प्राप्ति और चिन्ताका नाश तो केवल प्रभुके साथ जीवनका सम्पर्क हो जानेपर ही होते हैं। संसारमें बड़ी-से-बड़ी सफलताप्राप्त मनुष्य भी सदा जलते ही रहते हैं। फिर असफलतामें, रोगमें, प्रतिकूलतामें चिन्तित होना कौन आश्चर्यकी बात है? मनुष्यका मिथ्याभिमान, ममता, कामना, आसक्ति—ये ही उसके दुःखके कारण हैं।

× × × ×

संसारका संयोग-वियोग तो प्रारब्धाधीन है। इसी प्रकार जीवन-मरण भी है। पर सदा यह निश्चय मानना चाहिये कि प्रभु सदा-सर्वदा रात-दिन हमारे पास रहते हैं। हमसे कभी विलग होते ही नहीं। बल्कि एक दूसरेमें स्थित रहते हैं। 'मयि ते तेषु चाप्यहम्' 'वे मेरेमें रहते हैं और मैं उनमें रहता हूँ।' यह भगवान्‌की वाणी है। अतएव अपनेको नित्य भगवान्‌में और भगवान्‌को नित्य-निरन्तर अपनेमें देखकर सदा प्रफुल्लित रहना चाहिये। कभी किसी प्रकार भी विषाद नहीं करना चाहिये। कहीं भी रहो, नित्य-निरन्तर भगवान्‌में रहो और भगवान्‌को अपनेमें रक्खो। क्षणभर उन्हें न भूलो। फिर वे तो भूलेंगे ही नहीं। वे तो लोभीके धनकी तरह सदा हमें अपने हृदयमें ही बसाये रक्खेंगे।

× × × ×

जगत्‌में, जगत्‌के किसी प्राणी-पदार्थमें, लोक-परलोकके किसी भी भोगमें आसक्ति-ममता न रहे। भगवान्‌में ही अनन्य ममता हो जाय—एक भगवान्‌के सिवा और किसीमें कहीं भी मेरापन न रहे और यह ममता भी प्रेमपरिपूर्ण हो। उसमें अन्य कोई हेतु न हो—

अनन्यममता विष्णोर्ममता प्रेमसंगता।

फिर चित्तमें कहीं अशान्ति, दुःख होंगे ही नहीं। जबतक जगत्‌के प्राणि-पदार्थोंमें राग है, तभी तक अशान्ति-दुःख हैं। शरीर, प्राण, मन, बुद्धि, आत्मा—सभी अनन्यभावसे श्रीभगवान्‌को समर्पण कर

दिये जायँ। केवल भगवत्परायण होकर, भगवान्‌की सेवाके भावसे विभावित होकर, सर्वेन्द्रियद्वारा अनन्यरूपसे भगवान्‌का अनुशीलन या सेवन करना चाहिये।

रसमयत्व, आनन्दमयत्व, प्रेममयत्व भगवान्‌का परम स्वरूप है। इस स्वरूपकी प्राप्ति उपर्युक्त प्रेमरूपा अनन्य-भक्तिसे ही होती है। एक भगवान्‌को छोड़कर जब चित्तकी गति अन्य किसी ओर भी न रहे—मनकी सब प्रकारकी सारी फल-वासना सर्वथा छूट जाय और समस्त इन्द्रिय-वृत्तियाँ केवल श्रीभगवान्‌में ही अनन्य ममतायुक्त होकर उन्हींकी सेवामें नियुक्त हो जायँ, तभी प्रेमरूपा भक्तिकी सिद्धि होती है।

तुम इन सब बातोंपर ध्यान देकर अपने जीवनको भगवान्‌की मूर्तिमान् सेवा बना लो। ऐसा प्रयत्न करो, जिससे भगवत्कृपाके बलपर केवल एक भगवान् ही जीवनमें सर्वस्व होकर रह जायँ; अन्य कुछ मनमें रहे ही नहीं।

× × × ×

प्रभुप्रेम वास्तवमें हृदयका गुप्त धन है। वह तो प्रतिक्षण बढ़ता ही रहता है। रुकता, घटता, मिटता तो वह है, जो किसी कामना-वासनाजनित हो अथवा जिसका आधार लौकिक रूप, गुण, सौन्दर्य, ऐश्वर्य हो। प्रभुप्रेम इसीलिये परम निर्मल और अत्यन्त सूक्ष्म होता है कि वह कामना-वासनाशून्य केवल हृदयका परम धन होता है।

× × × ×

मनमें निरन्तर प्रभुकी स्मृति-संनिधिका जो अनुभव होता है, यह बहुत ही उत्तम बात है। शरीर कहीं भी रहे, किसी भी स्थितिमें रहे—मनमें यदि सदा प्रभु बसते हैं तो हम प्रभुके पास हैं और जहाँ प्रभु बसते हैं, वहाँ जगत्‌के काम-क्रोधादि दूषित विकारोंकी तो बात ही क्या है, जगत् भी नहीं आ सकता। श्रीतुलसीदासजीने संसारको ललकारकर कहा है—'संसार! तुम मेरे समीप नहीं आ सकते; तुम वहाँ जाओ, जिसके हृदयमें नन्दनन्दन न बसते हों'—

'सहित सहाय तहाँ बसि अब, जेहि हृदय न नन्दकुमार।'

गोपियोंने तो संसारकी बातसे बहुत ही दूर परमात्मातकके लिये अपने हृदयमें स्थानका अभाव बताया और दिन-रात सभी अवस्थामें श्यामसुन्दरके हृदयमें बसे रहनेका अनुभव बतलाया है—

नाहिंन रह्यो हिय महँ ठौर।
नंदनंदन अछत कैसे आनिये उर और॥
चलत, चितवत, दिवस, जागत, सुपन, सोवत रात।
हृदै तैं वह स्याममूरति छिन न इत उत जात॥

उस व्यक्तिका महान् सौभाग्य है, जिसके हृदयमें नित्य प्रभु बसते हैं। इस प्रकार जो भगवान्‌को नित्य-निरन्तर अपने मनमें रखता है, भगवान् भी उसको नित्य-निरन्तर अपने मनमें बसाये रखते हैं वैसे ही जैसे लोभी धनको बसाये रखते हैं—'लोभी हृदय बसत धन जैसे।' बल्कि प्रेमीजनके तो भगवान् स्वयं प्रेमी बन जाते हैं और उसे सुख पहुँचानेमें ही स्वयं सुखका अनुभव करते हैं और इसीलिये उसके हृदयमें नित्य छाये रहते हैं।

बस, भगवान् क्षणभरके लिये भी मनसे न निकलें, इसमें सावधानी रखनी चाहिये। जगत्‌का कोई भी विषय, कोई भी प्रलोभन, कोई भी दुःख, कोई भी सुख हमारे मनको क्षणभरके लिये भी अपनी ओर न खींच सके, इसके लिये सदा सचेत रहना तथा भगवान्‌की असीम अतुलनीय कृपापर विश्वास रखकर नित्य निश्चिन्त रहना चाहिये।

× × × ×

भगवान्‌की स्मृति बराबर बनी रहे, इस बातका पूरा ध्यान रखना चाहिये। जीवन क्षणभङ्गुर है,

पता नहीं कब किसका अन्त आ जाय। मानव-जीवनका एक-एक क्षण अमूल्य है और भगवान्‌की स्मृतिके लिये है। यहाँका कुछ भी अपना नहीं है। सभी असार है और अन्तमें दुःखप्रद है। इस बातका ध्यान रखकर विषयमात्रसे विरक्तिपूर्वक भगवान्‌का स्मरण करना चाहिये। एक-एक क्षण भगवान्‌के प्रति लगा रहना चाहिये।

मनमें अनुकूलता-प्रतिकूलताको लेकर क्षोभ न हो; हर अवस्थामें चित्त शान्त रहे। अपमान, निन्दा, दुःख, वियोग, रोग, दारिद्र्य, अभाव—सभीमें भगवान्‌की कृपाकी या स्वप्नवत् असत्ताकी अनुभूति हो। सावधानीके साथ मनुष्य-जीवनको सफल बनाना चाहिये। जीवनकी सफलता भगवान्‌के अखण्ड स्मरणसे और भोगोंसे अत्यधिक विरक्तिसे ही हुआ करती है।

× × × ×

भगवत्प्रेम वास्तवमें बड़ी ही विलक्षण वस्तु है। प्रेममें प्रतिकूलता यदि भासती भी है तो वह भी पवित्र प्रेमके कारण और प्रेमके लिये ही भासती है। इसी प्रकार अनुकूलतामें भी प्रेम ही कारण होता है। भगवत्प्रेममें निज सुखकी इच्छा नहीं रहती और न अपने इन्द्रिय-भोगोंकी तनिक भी वासना रहती है। उसके द्वारा जो कुछ होता है, सब अपने प्रेमास्पद प्रभु श्रीभगवान्‌के लिये ही होता है। यही उसका 'अपना सुख' है। इसीसे उसकी सभी क्रियाएँ 'स्वान्तःसुखाय' होनेपर भी वस्तुतः भगवान्‌के लिये ही होती हैं। अपने लिये तो उसका कोई काम शेष रह ही नहीं जाता—

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥ (गीता ११। ५५)

भगवान्‌ने कहा—'अर्जुन! मेरा वह भक्त मेरा ही काम करता है, मेरे ही परायण होता है, मेरा ही भक्त होता है, मेरे सिवा कहीं भी उसकी आसक्ति-प्रीति नहीं होती। जब कहीं राग नहीं तो, किसीसे वैर-द्वेष भी नहीं होता। ऐसा वह मेरा प्रेमी मेरे पास ही आता है।'

× × × ×

आना-जाना, संयोग-वियोग प्रारब्धाधीन है, प्रभुके नियत विधानसे होता है। विधान नित्य मङ्गलमय है। प्रसन्नतापूर्वक भगवान्‌के विधानको स्वीकार करना चाहिये। संसारके प्राणि-पदार्थोंमें, प्रत्येक परिस्थितिमें रागद्वेषरहित समबुद्धि होनी चाहिये। परिस्थिति लोकदृष्टिमें सर्वथा अनुकूल किसीके नहीं हो सकती, परंतु प्रत्येक परिस्थिति भगवान्‌के मङ्गलविधानसे आती है, यह विश्वास दृढ़ होनेपर प्रतिकूलता अनुकूलतामें परिणत हो जाती है। भगवान्‌के प्रेमराज्यमें तो भगवान्‌के सुखमें ही सुख है। अतएव वहाँ प्रतिकूलताको स्थान नहीं है। भगवान्‌पर, उनकी कृपापर विश्वास करनेसे मनुष्य सब दोषोंसे मुक्त हो जाता है।

हमलोगोंको प्रभु-कृपापर विश्वास करना चाहिये। यह मनोभिलाष बहुत सुन्दर तथा आदर्श है—'निरन्तर प्रभुकी स्मृति हृदयमें बनी रहे। मन राग-द्वेषरहित होकर प्रभुके मधुर स्मरणमें नित्य-निरन्तर लगा रहे। यही प्रभुसे भीख माँगता हूँ। मनमें प्रभुका प्रेम, उनका नित्य-मिलन बना रहे।' प्रभु-कृपापर हमलोग विश्वास रक्खें तो उनकी कृपा सारी विघ्न-बाधाओंको हटाकर हमारी उपर्युक्त इच्छा पूर्ण करेगी।

भगवान्‌का स्मरण प्रतिक्षण बना रहे—यह ध्यान रखना चाहिये। तथा घरके, जगत्‌के सारे काम उत्साहपूर्वक केवल भगवान्‌की सेवाके भावसे करने चाहिये। घरमें, घरकी वस्तुओंमें ममत्व न रहे। सेवाके भावसे ही घरका सम्बन्ध हो। ममता सारी भगवच्चरणारविन्दमें केन्द्रित हो जाय और जगत्‌की प्रत्येक परिस्थितिमें राग-द्वेषरहित समबुद्धि रहे—

ममता केवल राम सों, समता सब संसार। राग न रोष न दोष दुख, दास भये भवपार॥

भक्तगाथा

बाबा हिम्मतदास

(संग्राहक-प्रेषक—श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी, 'ब्रजेश' साहित्यरत्न, साहित्यालंकार)

बाबा हिम्मतदास उन संत-भक्त कवियोंमें थे, जिन्होंने संकटकालमें, जनसाधारणकी भाषाके माध्यमसे, हिंदू-धर्म तथा भारतीय संस्कृतिकी रक्षामें सहयोग दिया। स्वर्गीय बक्शी दीपचन्द्रजीने लगभग सन् १९०८ में बाबाजीकी संक्षिप्त जीवनी प्रकाशित की थी। वह पुस्तक अब दुर्लभ है। उनके यहाँ एक फटी-पुरानी प्रति मिल गयी। उसीके आधारपर यह सामग्री प्रस्तुत है।

बाबाजीका जन्म ग्राम बरायछ (पन्ना-राज्य)के जुझौतिया ब्राह्मणकुलमें, सन् १७३८ में विद्वान् पं० गोरेलाल मिश्रके सुपुत्ररूपमें हुआ था और वहीं सन् १८०२ में वे गोलोकधाम पधारे। स्वयं कहते हैं—

श्री गुरु अछर प्रताप ते अनुदित अधिक प्रकास।
नगर बरायछ में भये हरि-प्रिय हिम्मतदास॥

आपने प्रथम सारस्वत पढ़ना आरम्भ किया। इस स्थलपर पहुँचकर 'क्रियापराणां मध्ये भगवदाराधयकाः श्रेष्ठाः—क्रियावान् पुरुषोंके मध्यमें भगवत्की आराधना करनेवाले श्रेष्ठ हैं।' भगवद्भक्तिपर ऐसी दृढ़ आस्था हो गयी कि जीवन-कालमें ही आपको साकार प्रभुके दर्शन प्राप्त हो गये। कहते हैं—

जब ते लखे नंदनंदनको, नहिं सुहाय कोउ आनं।
समता मान रमे संतनमें, कहाँ राव ? कहँ राने ?
झुक झुक झुकत रहत निसि-बासर, जुगल चरन पहिचाने।
'हिम्मतदास' प्रेमरस छाके, मगन मस्त मस्ताने॥

'मगन मस्त मस्ताने'की कथा उन्हींकी कविताके माध्यमसे सुनते चलिये। पन्नामें जुगलकिशोरजीका प्रसिद्ध मन्दिर है। बरायछसे पन्ना चार कोसपर है। हिम्मतदासजीका दैनिक नियम था कि वे जुगलकिशोरजीकी संध्या-आरतीमें उपस्थित रहते और नौ बजे भगवान्को रातकी ब्यालू कराके, रात ११बजेके लगभग घर लौटते। एक दिन झाँझ बजाते, कीर्तन करते चले जा रहे थे कि मार्गमें चोरोंने घेरकर कहा कि 'जो कुछ है, रख दे।' बाबाजूने कहा कि 'सम्पत्तिके नामपर तो बस ये झाँझें हैं, सो ले लो।' और थपोड़ी बजाते भजन गाते आगे बढ़ गये। थोड़ी दूर जाकर चोरोंने अनुभव किया कि उनकी दृष्टि-शक्ति समाप्त है। गिरते-पड़ते दौड़े, बाबाजूको झाँझें वापस लौटायीं और चरणोंपर लोटकर नेत्रज्योतिकी भिक्षा माँगी। उनका हृदय तो दयाका समुद्र था। चोरोंसे वचन ले लिया कि आगे चोरी-बटमारी नहीं करेंगे और नन्दलालजूसे यह प्रार्थना की—

चोरीसे मुख मोड़ियो चोरन को नँदलाल।
हमरी वस्तु दिवाय कें, चोरन करो निहाल॥

झाँझें मिल ही गयी थीं। बजा-बजाकर यह भजन गाया—

भज मन नारायन, नारायन, नारायन॥
अधम तरे अधिकार भजन ते, यही नाम ते पारायन।
जे-जे भजत, पार भव-सागर, संभु प्रकास दया गायन॥
सिव-सनकादि आदि ब्रह्मादिक सुमिर सुमिर भए पारायन।
हिम्मतदास प्रेमरस छाके, और अनेकन तारायन॥

सुनते ही चोरोंकी आँखें खुल गयीं और बाबाजू जुगलकिशोरके दर्शनको चल पड़े, परंतु इस विघ्नके कारण पहुँचनेमें विलम्ब हो गया। मन्दिरके पट बंद हो चुके थे। पुजारीजीने कहा कि 'अब आज दर्शन न हो सकेंगे।' तब जुगलकिशोरका ध्यान करके आपने यह साखी कही—

कपटिन को लागे रहैं, हिम्मतदास कपाट।
प्रेमिन के पग धरत ही, खुलत कपाट झपाट॥

इतना कहते ही पट अपने आप खुल गये और बाबाजूको भगवान्की मूर्तिके दर्शन हुए। तब प्रेमविभोर हो यह स्तुति की—

चरन पाताल धरे, धरनी कटि बीच धरे,
माथे गोलोक धरे आपइ रखवारी हैं।
नाभि हू में कंज धरे, कंज हू में ब्रह्म धरे,
ब्रह्म हू में जीव धरे, माया बिस्तारी हैं॥
पापिन को संत धरे, संतन को ध्यान धरे,
धर्मिन को हृदे धरे, हिम्मत तिहारी है।
मथुरा में जन्म धरे, गोकुल में प्रेम धरे,
पन्ना में देह धरे, बिहरत बिहारी हैं॥

लगे रहो निसिबासर नाम सों,
छाके रहो छवि देखि बिहारी।
बैठे रहो दरबार गुपाल के,
नीके लगे गुन गान उचारी॥
तीनहु लोक के नायक हो प्रभु,
रामलला, बैदेहदुलारी।
'हिम्मतदास' सदा उर में,
बसिबे करो राधिका-कुंजविहारी॥

उस समय पन्नाके महाराज धौकलसिंहजी थे। अबतक उन्हें बाबा हिम्मतदासके दर्शन नहीं हुए थे। इस अवसरपर वे भी पहुँच गये और बाबाजूको कीर्तनमें मग्न देखा। उनकी चरण-रज ली और बोले कि 'आपको प्रतिदिन बरायछसे आनेमें बड़ा कष्ट होता है। हम आपको यहीं सम्पत्ति देते हैं। पन्नामें रहकर भजन-पूजन कीजिये।' उत्तर मिला—

राजपाट चाहें नहीं, नहिं चाहें धन धान।
'हिम्मत' पुरिया प्रेम की, नाम कनी से काम॥

इसपर महाराजने अपने आभूषणोंसे एक उत्तम हीरा निकालकर बाबाजूको अर्पित करना चाहा। तब कहा—

'हिम्मत' हीरा कारने, तनमें कुवा लगाय।
ज्ञान कुदारिन खोदिए, मिलत मिलत मिल जाय॥
पाँच तत्व में पाँच है, सोई कँकरू आय।
सुमति टिपरिया छानिए, तब कछु परत दिखाय॥
तत सर दौना अगम है, जलचर है बहु जोर।
'हिम्मत' हीरा हिये में, ढूँढ़ो जुगलकिशोर॥
जग में हीरा राम हैं, रहे सकल घट पूर।
हरिदासन के दास को हिम्मतदास हजूर॥

तात्पर्य यह है कि 'हीरा तो राम और कृष्ण हैं। पानेके लिये तनरूपी खदान (कुवा) को ज्ञानकी कुदालीसे खोदना चाहिये। पञ्चतत्त्वका शरीर है और उसमें भी पाँच विकार—काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह हैं, जो कंकड़रूप हैं। सद्बुद्धिकी टोकरीसे छाननेपर रत्न और कंकड़का भेद मालूम होगा। दौनारूपी सरोवरमें बड़े-बड़े मगरमच्छ हैं। इनसे बचकर हृदयकी गहराईमें जुगलकिशोररूपी हीरा ढूँढ़ना चाहिये। जगत्‌में राम ही हीरा है, जो सभी घटोंमें पूर्ण है। हे हुजूर! मैं हरिदासोंका दास ये कंकड़-पत्थर लेकर क्या करूँगा?'

ऐसे ज्ञानी, ध्यानी, भक्ति-वरदानीके लिये भौतिक सम्पत्तिका मूल्य क्या? उन्हें तो 'रामरतन-धन' मिल गया था। परंतु साधु-समागम होता रहता था। संत पाहुने आते रहते थे। भजन-कीर्तनके साथ उनका आतिथ्य भी करना पड़ता था। एक बार एक मण्डली आ पहुँची और घरमें कुछ था नहीं। ऐसे अवसरोंपर ये परमेश्वरा बनियेसे सामग्री उधार ले आया करते थे। उसके यहाँ पहुँचे, परंतु पहलेकी ही उधारी बहुत बढ़ जानेके कारण, उसने टालमटोल कर दी। उदास-मन घर लौटे और धर्मपत्नीसे बोले—'बब्बूकी बऊ अब कैसो होय? साधुजमात द्वारे परी है और परमेश्वरा सामग्री नहीं देत आय।'

पत्नी—(नाकसे नथ उतारकर) तो का चिन्ता है लेव या नथ ले जाव और ऊके पास धरके जो चाहिये सो ले आव।

बाबाजू नथ लेकर बनियाके पास गये और सामग्री ले आये। साधुओंने ठाकुरजीको भोग लगा, आनन्दसे प्रसादी पा, भजनानन्द किया। उनके आग्रहपर बाबाजूने यह पद कहा—

भजन बिन हूहौ पडा कलार के।
लादत-जोतत जनम बितैहौ, मर जैहौ मारे भार के॥
अँधरा, लँगड़ा, पँगुड़ा हूहौ, टूका न जुरैं बजार के।
कहुँ कूकर-सूकर हूहौ, ऊँट हूहौ सरकार के॥
चौरासी के गोता खैहौ, कोउ न लगिहै पुकार के।
हिम्मतदास बरायछवारे, गावत पद निर्वार के॥

प्रातःकाल साधुओंकी जमात विदा हो गयी और बाबाजू नित्यनियमके हेतु नदीकी ओर चल पड़े। उनकी धर्मपत्नीका यह दैनिक नियम था कि प्रातः उठकर पहले ठाकुरजीका चौका-टहल कर, पूजाके पात्र धो वहाँ रखती और पूजाकी सब सामग्री जुटाकर गृहकार्यमें लग जाती। इसी बीचमें भगवान् जुगलकिशोरजीने क्या लीला रची कि बाबा हिम्मतदासजीका रूप धारणकर परमेश्वरा बनियाके यहाँ पहुँचे और बोले—'भैया! अपनी बही लै आव और हिसाब करके अपने रूपैया लै ले और हमारी नथ दै दे।'

परमेश्वरा—अरे बाबाजू! आप तो काल कहते कि रुपैया नइयाँ, रात भरेमें काँसे आ गये?

भगवान्—का तैंने हिम्मतदासको सम्यार कंगलइ जान लौ? ले अपने रूपैया। बताव, किते होत है?

पर०—(बही देखकर) महराज ! कालके नथ मद्धे समेते पौने तीन सौ होत हैं ।

भगवान्—(थैली खोलकर) ले गिन ले ।

पर०—(रुपये गिनकर और नथ लाकर तथा बहीमें हस्ताक्षर करवाते हुए) लेव महराज अपनी नथ देख लेव और कालकी न बनी बात छिमा करियो ।

भगवान् नथ लेकर हिम्मतदासजूके घरपर पहुँचे और उनकी पत्नीसे बोले—'बब्बूकी बऊ ! लेव जा नथ पहिर लेव ।'

पत्नी—(चौका करती हुई) अबई तो आप धोती-लोटा लै के नहावे गये हते । नथ कैसे के मुकुता लाये ? रूपैया कहाँसे लाये ?

भ०—अरे ! हिम्मतदासको कहूँ रूपैयनकी कमी है ? लेव, जल्दी आवो, नथ तो पहिर लेव !

प०—हम ठाकुरजीको चौका करत हैं, भईं चौतरियापर धर देव । हाथ धोयके पहिर लेवौ ।

भ०—सोनाको गहनो इतै-उतै धरने नईं परत । कोउ उठा लै जाय तौ ? आवो आवो, जल्दी पहिर लेव ।

प०—स्याने भये पै मस्खरी न गयी ! हमारे तो हाथ भिड़ाने हैं । आपइ पहिराय देव ।

भगवान् नथ पहिराकर बाहर निकले और अन्तर्धान हो गये ।

जब बाबाजू नदीसे स्नानादि करके आये और पत्नीको नथ पहिने काम करते देखा, तब बोले—'अरी बब्बूकी बऊ ! जा नथ तुम्हें कहाँसे मिल गयी ? अबै को लै आवो, जो तुमने पहिर लई ?'

प०—सो आप आज कैसो करत हौ ? अबई नथ पहिराबेमें मस्खरी करिके गये और अब फिन आके मस्खरयान लागे ? सो बुढ़ापेमें मस्खरी शोभा नहीं देय ।

बाबाजू—एँ ! जा का कही ? हम मस्खरी आय करत हैं ?

प०—मस्खरी और कैसी होत है ? अबै मैं हाथ लो नईं धोन पाई, आप आपइ नथ पहिरायके गये । आज सिर्री हो गये हों का ?

बा०—(झुँझलाकर)—

सिर्री सिर्री सब कहैं, सिर्र न पकौ अंग ।
'हिम्मत' सिर्री जब भये लग्यो स्यामलो रंग ॥

ऐसा कहकर बाबाजू तुरंत परमेश्वराके घर पहुँचे और पूछा—'हमारी नथ तैंने के के हाथ दई ?'

पर०—महराजजू ! आप कैसी बतात हौ ? अबई, तनकई देर भई, आप नथके और पिछले खातेके सब रूपैया दै के, नथ नईं लै गये ?

बा०—अरे भैया ! हम तो नथ नईं लै गये, न अबै रूपैया दै गये ।

पर०—अच्छा न मानो तो बहीमें अपने दसकत देख लेव ।

बा०—(अपने ही हस्ताक्षर देखकर) अरे परमेश्वरा ! तोय तो जुगलकिशोरजूने दर्शन दए । आजसे तैं परमेश्वरदास भयो ।

घर लौटकर पत्नीसे बोले—भाग्यवान ! तुम्हें तो साच्छात जुगलकिशोरजूने दर्शन दिए और परमेश्वरदास बनियाको सोऊ दर्शन भए । मैंने कौन अपराध करो । जो मोय दर्शन नईं दए—

धनियें दर्सन बनियें दर्सन, मो को निपट भुलाय ।
'हिम्मत' सो बिगरी कहा, बार बार पछिताय ॥

बाबाजूके नेत्रोंसे जलधार बह चली । अत्यन्त शोकाकुल, विरहाकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़े और यह पद गाने लगे—

मोरी लागी लगन गिरधारी से ॥
का काहूकी आसा बासा, कहा काम सिरदारी से ?
का काहूके निन्दे बिन्दे कहा काम संसारी से ?
स्यामकिसोर से मेरो मन लाग्यो, कहा और नर-नारीसे ?
'हिमतदास' अनन्य अलौकिक जुगल चरन रज प्यारी से॥

उस दिन अन्न-जल त्याग आसन लगा बैठ गये । दूसरे दिन प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें ये शब्द कानोंमें सुनायी पड़े—'आजके सातवें दिन वृन्दावनमें तुम्हें दर्शन मिलेंगे । यहाँ नहीं ।'

केवल हरिप्रेमके सहारे भजन करते हुए बाबाजू सातवें दिन, पाँव-पयादे वृन्दावनधाम पहुँचे और वहाँ भगवान्ने साक्षात् बालकृष्ण, गोपीकृष्णके रूपोंमें दर्शन दिये । रास्तेमें प्रतिदिनकी मंजे (मंजिल) लिखते गये, भगवान्के नाना रूपोंकी महिमा गायी तथा वृन्दावनके घाटों-बाटों, वनों-निकुंजों, मन्दिरों-झाँकियोंका वर्णन अनेकानेक ललित पदोंमें किया ।

अपना प्रेम-सिद्धान्त और भक्तानुराग बाबाजूने सौ साखियोंमें कहा है, जिनके कुछ उदाहरण ये हैं—

हिम्मत प्रेमी संत जे, तिनको इहै हवाल।
छाके मन माते रहैं, रति चरनन गोपाल॥
नर-तन, बर्तन पाप को, बड़े पुन्य ते होय।
सो हिम्मत हरिभजन बिन, वृथा न डारो खोय॥
कहा भयो भरमत फिरे, लगी न हरि सो प्रीति।
हिम्मत हरि घर ही मिलैं, होय हिंये परतीति॥
हिंम्मत हरि हरि कहत ही, हर जाती सब पीर।
हरिभक्तन हिय हर घड़ी, सदा बसै रघुवीर॥
यारी की जो होय रुचि, यार करौ हरिदास।
वैर न काहू सो करौ, कबहूँ हिम्मतदास॥
पहिर ज्ञान की घूँघरू, सुरति तमूरी जोर।
हिम्मत मन मिरदंग सो, रिझवत नंदकिसोर॥
नररूप नरदेह है, अमीरूप हरिनाम।
ताको हिम्मतदास कह, सुमिरौ आठौ जाम॥
कविताई कोटिन करै, पाय द्रव्य पढ़ि ग्रंथ।
हिम्मतदास प्रतीत बिन, मिलै न कमला कंथ॥
पढ़े पढ़ाये है कहा, जो नहिं उपजै ज्ञान।
हिम्मत संपति सूम की, सेवै भूमि निदान॥
कबहुँक मुरली कर लिए, कबहुँक तीर कमान।
शंख चक्र कबहुँक लिए ललित त्रिभंगी कान॥
सत साखी श्रीराम की, जन हिम्मत कह गाय।
जो कोऊ समुझै सुनै, पावै पद रघुराय॥

बाबाजू यात्रा करते हुए एक बार रुलीमनाबादके पास कौड़िया ग्राममें पहुँचे। वहाँ बक्शीकुलके एक बालक वंशरूपको खेलते देखा। उन्हें बालकका भविष्य विलक्षण प्रतीत हुआ। उसकी माँसे कहा कि हमारी दीक्षा दिलवा दे। माँने कहा कि 'वह नितान्त निर्धन है, दक्षिणा कहाँसे जुटायेगी ?' तब स्वयं ही सब प्रबन्ध करके उसे दीक्षित कर लिया। वह बालक बक्शी कुलभास्कर हुआ। मन्दिर, तालाव, कुएँ आदि बनवाकर पुण्यलाभ किया। उसके वंशज, पीढ़ी प्रतिपीढ़ी, आजतक बाबाजूके वंशजोंके शिष्य होते आये हैं।

रुद्रप्रिय बेल—धार्मिक महत्ता एवं स्वास्थ्यरक्षामें उपयोग

(लेखक—वैद्य पं० श्रीगोपालजी द्विवेदी)

बिल्ववृक्ष प्रायः धार्मिक स्थानों विशेषकर भगवान् शंकरके उपासना-स्थलपर लगानेकी भारतमें एक प्राचीन परम्परा है। यह वृक्ष अधिक बड़ा न होकर मध्यमाकारवाला होता है। शाखाओंपर तीक्ष्ण काँटे होते हैं। पत्ते तीन-तीन या कभी-कभी पाँच-पाँचके गुच्छोंमें लगते हैं। बेलका फूल सफेद तथा सुगन्धपूर्ण होता है। फल प्रायः गोलाकार कड़े आवरणवाला, स्वादिष्ट, मधुर और हृदयको प्रिय लगनेवाली सुगन्ध लिये होता है। गूदेमें सैकड़ों बीज गोंद लिपटे हुए होते हैं। वसन्त ऋतुके अन्तमें पुराने पत्ते गिरकर नये आने लगते हैं। ग्रीष्ममें तो इसका वृक्ष हरियाले पत्तों एवं फलोंसे भर उठता है। देशके सभी प्रान्तोंमें पाये जानेवाला यह बेल कोई अपरिचित वस्तु नहीं है। बेलके सम्बन्धमें धार्मिक महत्त्वोंको निम्न अंशसे ज्ञात करें—

श्रीशिवपुराणके अन्तर्गत बेल-माहात्म्यका वर्णन इस प्रकारसे किया गया है—

बिल्वमूले महादेवं लिङ्गरूपिणमव्ययम्।
यः पूजयति पुण्यात्मा स शिवं प्राप्नुयाद् ध्रुवम्॥
बिल्वमूले जलैर्यस्तु मूर्धानमभिषिञ्चति।
स सर्वतीर्थस्नातः स्यात्स एव भुवि पावनः॥
(श्रीशिवपुराण, श्लोक १३-१४)

अर्थात्—बिल्वके मूलमें लिङ्गरूपी अविनाशी महादेवका पूजन जो पुण्यात्मा पुरुष करता है, उसे निश्चय ही कल्याणकी प्राप्ति होती है। जो मनुष्य शिवजीके ऊपर बिल्वमूलमें जल चढ़ाता है, उसे सब तीर्थोंमें स्नानका फल मिलकर पवित्ररूपता प्राप्त होती है।

एतस्य बिल्वमूलस्याथालबालमनुत्तमम्।
जलाकुलं महादेवो दृष्ट्वा तुष्टो भवत्यलम्॥
(श्लोक १५)

अर्थात्—इस बिल्वमूलके सब ओर जलसे परिपूर्ण आलबालको देखकर भगवान् शंकर प्रसन्न हो जाते हैं।

इतना ही नहीं—

पूजयेद् बिल्वमूलं यो गन्धपुष्पादिभिर्नरः।
शिवलोकमवाप्नोति संततिर्वर्धते सुखम्॥
बिल्वमूले दीपमालां यः कल्पयति सादरम्।
स तत्त्वज्ञानसम्पन्नो महेशान्तर्गतो भवेत्॥

बिल्वशाखां समादाय हस्तेन नवपल्लवम्।
गृहीत्वा पूजयेद् बिल्वं स च पापैः प्रमुच्यते॥
बिल्वमूले शिवरतं भोजयेद्यस्तु भक्तितः।
एकं वा कोटिगुणितं तस्य पुण्यं प्रजायते॥
बिल्वमूले क्षीरयुक्तमन्नमाज्येन संयुतम्।
यो दद्याच्छिवभक्ताय स दरिद्रो न जायते॥

(शिवपुराण-बिल्वमाहात्म्य, श्लोक १६–२०)

उपर्युक्त पंक्तियोंका सामान्य भावार्थ इस प्रकारसे है—'जो भक्त बिल्वमूलमें गन्ध-पुष्पादिके द्वारा पूजन करते हैं, उन्हें शिवलोककी प्राप्ति होती है तथा संतान और सुख बढ़ता है। जो शिवभक्त बिल्वमूलमें आदरपूर्वक दीपमालाकी कल्पना करते हैं, वे तत्त्वज्ञानसे परिपूर्ण हो शिवजीके अन्तर्गत होते हैं और जो बिल्वकी शाखाको लेकर उससे नवीन पत्र ग्रहण कर पूजन करते हैं, वे सभी प्रकारके पातकोंसे मुक्त हो जाते हैं। जो शिवभक्तको बिल्वमूलमें भक्तिपूर्वक भोजन कराता है, उसे एक व्यक्तिको भोजन करानेमें ही करोड़को भोजन करानेका फल मिलता है। जो मनुष्य बिल्वमूलमें दूधसे युक्त घृत और अन्न रखकर शिवभक्तको देता है, वह कभी दरिद्री नहीं हो पाता।'

शिवपुराणमें ही आगे लिङ्गपूजा-विधानके अन्तर्गत पुनः बिल्वकी चर्चा आयी है। यथा—

पूजयेत्परया भक्त्या शंकरं भक्तवत्सलम्।
सर्वाभावे बिल्वपत्रसमर्पणीयं शिवाय वै॥
बिल्वपत्रार्पणेनैव सर्वपूजा प्रसिध्यति।
ततः सुगन्धचूर्णं वै वासितं तैलमुत्तमम्॥

अर्थात्—भक्तवत्सल भगवान् शिवजीका परम भक्तिपूर्वक पूजन करे। पूजनमें यदि अन्य कोई वस्तु उपलब्ध न हो तो बिल्वपत्र ही समर्पित करे। बिल्वपत्रके समर्पणसे ही सब पूजन सिद्ध हो जाता है। फिर सुगन्धित चूर्णद्वारा सुवासित किया हुआ तैल प्रसन्नतापूर्वक शिवजीको समर्पण करे।

ऋषियोंने कहा—'हे व्यासशिष्य सूतजी! अब आप बताइये कि किस-किस पुष्पके द्वारा पूजन करनेसे शिवजी क्या-क्या फल देते हैं?' सूतजीने कहा—"ऋषियो! क्रमपूर्वक वर्णन करता हूँ—तुम सुनो! यह विधि महर्षि नारदने पूछी थी तथा उत्तरमें प्रसन्न होकर ब्रह्माजीने उनके प्रति इस प्रकार कहा था—'कमल, बेलपत्र, शतपत्र या शंखपुष्पीसे शिवकी पूजा करे तो लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है।" इसीसे सम्बन्धित एक सुभाषितको पढ़ें—

पीतोऽगस्त्येन तातश्चरणतलहतो वल्लभो येन रोपाद्
गेहं मे छेदयन्ति प्रतिदिवसमुमाकान्तपूजानिमित्तम्।
तस्मात् खिन्ना सदाहं द्विजकुलनिलयं नाथ नित्यं त्यजामि

आदि।

यजुर्वेदी शिवार्चन-पद्धतिके अन्तर्गत बेलकी इस प्रकार चर्चा की गयी है—

त्रिदलं त्रिगुणाकारं त्रिनेत्रं च त्रिधायुधम्।
त्रिजन्मपापसंहारं बिल्वपत्रं शिवार्पणम्॥
अमृतोद्भवं श्रीवृक्षं शंकरस्य सदा प्रियम्।
तत्ते शम्भो प्रयच्छामि बिल्वपत्रं सुरेश्वर॥
त्रिशाखैर्बिल्वपत्रैश्च अच्छिद्रैः कोमलैः शुभैः।
तव पूजां करिष्यामि अर्चये परमेश्वर॥
गृहाण बिल्वपत्राणि सुपुष्पाणि महेश्वर।
सुगन्धीनि भवानीश शिव त्वं कुसुमप्रिय॥

यह तो रही धार्मिक महत्ता। अब इनके स्वास्थ्योपयोगी गुणोंको देखें। स्वास्थ्योपयोगी गुणधर्म—

१—दस्तोंकी प्रारम्भिक अवस्थामें बेलगिरी, सोंठ, मोचरस, धायके फूल और जलसे धोकर सुखायें। प्रत्येक १-१ तोला, धनिया २० तोले, सौंफ ४० तोले। सर्वप्रथम सोंठ, बेलगिरी, मोचरसके छोटे-छोटे टुकड़े कर हल्की अग्निपर सेक दे। गन्ध आते ही उतार लेना चाहिये। सभीको मिला चूर्ण बना कपड़ेसे छानकर सुरक्षित रख दें। एकसे तीन ग्रामकी मात्रासे मट्ठे या शर्बतके साथ दिनमें तीन बार रोगीको दें। इससे शीघ्र ही लाभ मिलेगा।

२—पीलीया, सूजन, कब्ज आदिपर बेलकी पत्तीका रस थोड़ी काली मिर्च मिलाकर चूर्ण बना दिनमें तीन बार प्रयोग करें।

३—पके बेलका गूदा, इमली और मिश्री भली प्रकार जलमें मसल छानकर शर्बत तैयार कर लें। इसके प्रातःकालके सेवनसे शारीरिक दाह, अतिसार, मूत्रका पीलापन, मिचलाहट, स्फूर्तिका अभाव आदि दोष शान्त हो जाता है।

४—घाव कैसा भी हो, बिल्वपत्रको जलमें पकाकर उस जलसे धोनेके बाद ताजे पत्ते पीसकर बाँध दीजिये। पीड़ा एवं पूय दोनोंका शमन करके घावको शीघ्र सुखानेमें सहायक होता है।

५—हृदयकी अधिक घबराहट, निद्रा एवं मानसिक तनावपर वृक्षके भीतरकी छाल १० तोले मोटी-मोटी कूटकर आधा सेर गोदूधमें डालिये और इच्छानुसार मीठा मिलाकर प्रातः और सायं कुछ समयतक नियमित प्रयोग कीजिये। वायुकारक पदार्थोंके सेवनसे बचें। लाभ मिलेगा।

६—क. श्वेतप्रदर और रक्तप्रदर महिलाओंमें पाये जानेवाली एक प्रकारकी व्याधि है। उसमें बचनेके लिये गोदूध इच्छानुसारके साथ बेलके ताजे पत्तेको पीसकर थोड़ा जीरा मिलाकर दिनमें दो बार सेवन करनेसे लाभ मिलता है।

ख. नेत्रोंका दुखना, लालिमा, अधिक कीचड़ आना आदिपर पत्तोंको पीसकर पुल्टिस बाँधना हितकारी होता है। बच्चोंके होनेवाले पीले दस्तोंमें एक चायकी चम्मच विल्वपत्र-रस देनेसे शीघ्र लाभ मिलता है।

७—बेलका मुरब्बा अतिसार, आमातिसार और खून मिले दस्तोंपर प्रभावशाली क्रिया दिखलाता है। आँतोंके घावोंको अच्छा करनेमें मुरब्बा बड़ा ही लाभकारी होता है। ताजे फलका गूदा, कबाबचीनीका चूर्ण एकमें मिलाकर ताजे दूधके साथ पिलानेसे पुराने उपदंशमें लाभ होता है।

८—रक्तविकारोंमें बेलका गूदा आधा पाव बराबर शक्कर मिलाकर अठन्नी भरकी मात्राके नित्य प्रयोग करनेसे लाभ होता है।

९—बेलके कोमल पत्तोंको किसी नीरोगी गायके मूत्रमें पीस लें। पीसी वस्तुसे चार गुना तिल तेल और तेलसे चार गुना बकरीका दूध सभीको मिलाकर हल्की-हल्की अग्निपर जलीय अंश उड़नेतक पकावें। इसके बाद नीचे उतार शीतल हो जानेपर सुरक्षित रख दें। यह तेल कानके अनेक रोगोंपर प्रभावकारी, बहरापन, साँय-साँयकी आवाज आना आदिमें अपना गुण दिखलाता है। इसे दिनमें दो-तीन बार छोड़ें।

इन रोगोंके अलावा आयुर्वेदीय औषध निर्माण करनेवाली फार्मेसियाँ और चिकित्सा-जगत्के पण्डितोंने प्रचुरतासे विल्वको अपनी विभिन्न ओषधियोंमें स्थान देकर इसकी उपयोगिताको और भी बढ़ा दिया है। आयुर्वेदिक चिकित्सक लोग अत्यन्त श्रद्धाके साथ इसके विभिन्न अङ्गोंका उपयोग रुग्ण लोगोंपर करते हैं। भारतमें अनेक वृक्षोंके पूजन-सम्मानादिकी प्राचीन परम्परा है; क्योंकि इनके अंदर गम्भीर कल्याणकारी वैज्ञानिक रहस्य छिपा हुआ है। बादीपुर (नैपाल)में प्रति दस वर्ष बाद एक अनोखा समारोह होता है, जिसमें कन्याओंके सामूहिक विवाह विल्वफलसे सम्पन्न करानेकी प्रथा प्राचीन कालसे चली आ रही है। नेपालियोंकी यह मान्यता है कि कुमारी कन्याओंका पवित्र बेलसे विवाह करा देनेपर वे वैधव्य-दुःखसे आजीवन बची रहती हैं।

इस प्रकार बेल वस्तुतः मानवमात्रके लिये एक कल्याणकारी प्राकृतिक वरदान है।

धर्मशाला

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

जिनके हंगामोंसे थे आबाद वीराने कभी।
शहर उनके मिट गये, आबादियाँ बन हो गईं* ॥

महात्मा अपनी मस्तीमें घूम रहे थे। सामने राजभवन दीखा तो उसीमें घुस गये।

'तुम भीतर कैसे आ गये ?' राजाके दृष्टि उठाते ही क्रुद्ध होकर एक सेवकने पूछा।

'धर्मशालामें सभी जाते हैं।' महात्माने बड़ी शान्तिसे उत्तर दिया—'फिर मैंने कौन-सा अपराध किया ?'

'यह धर्मशाला है ?' सेवकका क्रोध बढ़ा 'महाराजके विशाल भवनको धर्मशाला कहते हो ?'

'महाराजके पूर्व इस भवनमें कौन रहता था ?' शान्त महात्माने प्रश्न किया।

'महाराजके पूज्य पिताजी।' सेवकने तुरंत उत्तर दिया।

'महाराजके पितासे पूर्व ?'

'महाराजके पितामह।'

'इनके पितामहके पूर्व ?'

'प्रपितामह ?'

'उनके पूर्व ?'

'वृद्धप्रपितामह।'

'धर्मशाला किसे कहते हैं ?' महात्माने फिर पूछा।

'कुछ ही समय रहकर जहाँसे प्रस्थित होना पड़े', सेवकने उत्तरमें कहा 'और फिर उस स्थलसे कोई भी सम्बन्ध न रह जाय।'

'फिर मैंने कौन-सी अनुचित बात कही ?' महात्माने कहा—'इस भवनमें महाराजके वृद्धप्रपितामह, प्रपितामह और पिता सभी आये और कुछ दिन रहकर सभी प्रस्थान कर गये तथा अब फिर इस भवनसे उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं।'''फिर यह जिसे तुम राजभवन कहते हो, धर्मशाला नहीं तो और क्या है ?'

'महाराज! आप सत्य कहते हैं।' दूसरे ही क्षण राजा महात्माके चरणोंमें था। उसने बड़ी ही विनयसे कहा—'सचमुच जगत् धर्मशाला ही है और दुःख है कि हम सभी अपने वास्तविक घर [भगवद्धाम] को भूलकर इस ममत्वको गाढ़ा करते जा रहे हैं।

* जिनके शौर्यसे जंगल भी कोलाहलमय बना था, आज उनके शहर ध्वंस हो चुके हैं और आबादियाँ मिट गयी हैं।

परमार्थ-पत्रावली

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पत्र)

(१)

सादर हरिस्मरण। आपके दो पत्र मिले। समाचार विदित हुए। कृपा तो सबपर प्रभुकी है, उसपर लक्ष्य रखते हुए उसका आदर करना चाहिये। मुझमें कृपा करनेकी सामर्थ्य कहाँ है ? आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमसे इस प्रकार है—

१—गृहस्थाश्रमविषयक निर्णयके सम्बन्धमें मैंने पिछले पत्रमें सब बातें लिख दी थीं। उसके अनुसार आपको निर्णय कर लेना चाहिये। मनुष्य-जन्म सफल बनानेके लिये कोई भी आश्रम वास्तवमें साधक या बाधक नहीं है। जैसी भी परिस्थिति प्राप्त हो, उसे प्रभुका प्रसाद मानकर उसका सदुपयोग करते रहनेमें ही मनुष्य-जन्मकी सफलता है। प्रभुने अनुपम कृपा करके सभी मनुष्योंको बुद्धि और विवेक प्रदान किया है, उसका आदर करना, उसके अनुसार जीवन बनाना ही मनुष्यका पुरुषार्थ है।

२—कन्याको देखनेका काम आपके बड़े-बूढ़े कुटुम्बी जनोंपर, जो आपको गृहस्थ बनानेके लिये आग्रह करते हैं, छोड़ दीजिये और कन्याके पिताको तथा कन्याको यह अच्छी प्रकार सूचित करा दीजिये कि 'मेरा लक्ष्य प्रभुकी भक्ति करना है, सांसारिक उन्नति नहीं; ताकि पीछे उनको दुःख न हो।' आपका उद्देश्य यह होना चाहिये कि पत्नीसे मुझे कुछ लेना नहीं है, धर्मानुकूल उसके अधिकारकी पूर्ति कर देना है।

३—आजकल संन्यास-आश्रममें भी साधन-सम्बन्धी विघ्न बहुत हैं। उसमें सम्मान-पूजन, स्त्रियोंका सङ्ग, भेंटके रूपमें भोगोंकी प्राप्ति आदि बहुत-से विघ्न आते हैं। अतः साधकको चाहिये कि उसके सामने जिस समय जो परिस्थिति है, उसे प्रभुका अनुग्रह माने; अपने साथियोंसे अपने मनकी बात पूरी करानेकी आशा न रक्खे, जहाँतक हो सके धर्मानुकूल उनके मनकी बात पूरी करता रहे। जो बात धर्मके विरुद्ध हो, उसके लिये क्षमा माँग ले और निवेदन कर दे कि यह करनेमें मैं असमर्थ हूँ। किसी भी परिस्थितिमें न तो आसक्त हो और न किसी आनेवाली परिस्थितिसे भयभीत हो; क्योंकि हमारे प्रभु भयहारी हैं, उनपर निर्भर रहनेवालेके लिये भय कहाँ है ?

४-५—विवाह-गृहस्थी यदि कोई सुखके लिये करे तो उसकी भूल है। सुख तो किसी भी आश्रममें नहीं है। सुखके साथ दुःख हर एक परिस्थितिमें लगा ही रहता है; क्योंकि सुखका जन्म दुःखसे ही होता है और उसका अन्त भी दुःखमें होता है। वास्तवमें गृहस्थाश्रमका विधान सुखभोगके लिये नहीं है, किंतु जिन कामनाओंको विचारके द्वारा नहीं मिटाया जा सकता, मर्यादित उपभोगके द्वारा उनका स्वरूप समझकर उन कामनाओंको मिटानेके लिये ही गृहस्थका विधान है। अतः साधकको चाहिये कि कोई भी कार्य सांसारिक सुखभोगके लिये न करे, अपितु सुखभोगकी कामना मिटानेके उद्देश्यसे ही करे। गृहस्थ आदि आश्रमोंका विधान शास्त्रमें इसीलिये किया गया है।

६—अपने किये हुए कर्मोंका जो फल-भोग है, उसीका नाम 'प्रारब्ध' है। नये कर्म करनेमें मनुष्य अधिकांशमें स्वतन्त्र है। प्रारब्धका काम तो सुख-दुःख देनेवाली अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति प्राप्त करा देनामात्र है। पर उस प्राप्त वस्तु, बल तथा योग्यताका

सदुपयोग करना बुद्धिमान् साधकका काम है; इसमें प्रारब्ध कुछ नहीं कर सकता ।

अनेक संकल्प उठनेका कारण शरीर और संसारमें अहंता, ममता है । अतः साधकको चाहिये कि सब कुछ प्रभुका समझे और एकमात्र प्रभुको ही अपना समझे; सबसे निराश हो जाय एवं दृढ़ और सरल विश्वास-पूर्वक प्रभुपर निर्भर होकर सर्वथा निर्भय और निश्चिन्त हो जाय । फिर अपने-आप प्रभु-कृपासे सब संकल्प शान्त हो सकते हैं ।

मायाका बल तभीतक है, जबतक साधक उससे कुछ चाहता है । जब वह उससे सम्बन्ध तोड़कर प्रभुसे सम्बन्ध जोड़ लेता है—मायासे विमुख होकर प्रभुके सम्मुख हो जाता है, उसी समय वह बड़ी आसानीके साथ मायासे पार हो जाता है—'मायामेतां तरन्ति ते ।' (गीता ७ । १४) यह मायाका गूढ़ रहस्य है ।

७—ईश्वरकी उपासनाके भेद तो साधकके विश्वास, योग्यता और रुचिके भेदसे अनेक हैं, जो होने ही चाहिये । उपासनाके साधन सभी उत्तम हैं, पर सभी साधनोंमें ईश्वरपर दृढ़ विश्वास अवश्य होना चाहिये । ईश्वरपर विश्वासके साथ-साथ अन्य सांसारिक पदार्थ-विषयक विश्वासोंका त्याग भी परम आवश्यक है । इसी प्रकार ईश्वरके साथ प्रगाढ़ सम्बन्ध होना भी परम आवश्यक है ।

ईश्वर निर्गुण निराकार भी है एवं सगुण और साकार भी है । अतः जिस साधककी जिस स्वरूपमें परम श्रद्धा हो, जिसका स्मरण वह सुगमतासे कर सके, जो उसे स्वभावसे ही रुचिकर और प्रिय हो, वही उसके लिये सर्वश्रेष्ठ है । नाम-जप तो प्रभुकी स्मृतिमें विशेष सहायक है ।

त्याग और वैराग्य तो संसारको दुःखरूप, नाशवान् और अपना न माननेके साथ-साथ ही हो जाता है ।

८—नाम-जपके साथ-साथ, जिसके नामका जप करते हैं, उसके सम्बन्ध, प्रियता और उसके स्वरूपका स्मरण अवश्य रहना चाहिये । ईश्वर-प्रेममें कोई आश्रम बाधक नहीं है । आश्रमके कार्यको ईश्वरका कार्य समझकर उसकी प्रसन्नताके लिये उसीके आज्ञानुसार करते रहना चाहिये । उसके बदलेमें कुछ आशा नहीं रखनी चाहिये । इसमें हैरान होनेका कोई कारण नहीं है । कठिनाई तो सब मनुष्यकी अपनी बनायी हुई है, वास्तविक नहीं है ।

९—क्षणिक वैषयिक सुखमें तथा विषय-भोगोंकी कामनाओं और इच्छाओंमें कभी नहीं फँसना चाहिये । इसका अर्थ यह कभी नहीं है कि गृहस्थाश्रम इनमें फँसानेवाला है, और दूसरे आश्रम नहीं हैं । जबतक मनुष्यका भीतरी सम्बन्ध शरीर और संसारसे रहेगा अर्थात् वह जबतक शरीरको ही अपना स्वरूप (मैं) मानता रहेगा और उससे सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्ति और पदार्थोंको अपना 'मेरा' मानता रहेगा, तबतक किसी भी आश्रममें वह कामनाओं और इच्छाओंके जालसे नहीं छूट सकेगा ।

विषयोंसे छुटकारा पानेका उपाय उनका सदुपयोग करना और उनको अपना न मानकर सर्वथा असङ्ग हो जाना ही है । ऊपरसे उनको छोड़ देना तथा भीतरसे उनमें आसक्त रहना और उनकी कामना करना विषय-भोगसे छुटकारा पानेका उपाय नहीं है ।

१०—निद्राके समय स्वप्नमें कामके वेगका उत्पन्न होना यह सिद्ध करता है कि आपके लिये विवाह करके शास्त्रमर्यादानुसार उपभोगद्वारा उस कामको मिटाना आवश्यक है । जिस कामनाको मनुष्य विचार-के द्वारा नहीं मिटा सकता, उसको मिटानेका उपाय मर्यादित तथा वैध भोगके द्वारा उसके स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करके उसकी सूक्ष्म वासनाको मिटा देना ही है । जो मनुष्य

सांसारिक सुखभोगके लिये विषयोंका सेवन करता है, उसकी वासना तो उत्तरोत्तर प्रबल होती है, पर जो साधक भोगवासनाको मिटानेके उद्देश्यसे विषयोंकी वास्तविकताका अनुभव प्राप्त करनेके लिये उनका मर्यादित सेवन करता है, वह उपभोगकी वासनाको मिटानेमें समर्थ होता है। इसीलिये शास्त्रमें गृहस्थाश्रमका विधान है। इसके करनेमें साधक सर्वथा समर्थ है।

११–गृहस्थाश्रममें रहकर भी मनुष्य यदि प्राप्त परिस्थितिका सदुपयोग करे तो बड़ी सुगमतासे वह त्याग और भगवत्प्रेमको प्राप्त कर सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं है।

धर्मपत्नीको मायारूप या साधनमें विघ्नरूप नहीं मानना चाहिये, प्रत्युत यह समझना चाहिये कि प्रभुने कृपा करके इसे साधनमें सहायक रूपसे भेजा है। धर्मपत्नी बाधक तो तब होती है, 'जब मनुष्य उससे सुखकी आशा करता है, उसमें मोह करता है, ममता करता है'—ऐसा न करके जब उसको और अन्य सभी साथियोंको भगवान्‌का मानकर प्रभुके नाते अर्थात् इस भावसे कि 'धर्मानुकूल इनकी सेवा करनेसे मुझे प्रभुकी प्रसन्नता प्राप्त होगी, मेरा प्रभुमें प्रेम बढ़ेगा और आसक्तिका नाश होगा'—उनकी सेवा करे तो गृहस्थाश्रम बाधक न होकर साधन बन सकता है। उससे मोह और कामनाका समूल नाश हो सकता है।

प्रभुकी कृपा तो सदा सबपर है। उसपर विश्वास तथा उसका आदर करनेपर उसकी अनुभूति पद-पदपर हो सकती है। प्रभुकृपाकी प्राप्तिके लिये किसीको भी निराश नहीं होना चाहिये। उसका तो तत्काल वर्तमानमें ही अनुभव कर लेना चाहिये।

जहाँ राम तहँ काम नहिं, काम जहाँ, नहिं राम।
तुलसी दोनों नहिं रहैं, रबि रजनी इक ठाम॥

—यह दोहा सर्वथा सत्य है। इसीलिये सब प्रकारकी कामनाका त्याग करके ईश्वर-प्रेम प्राप्त करनेकी बात कही जाती है। कामना तो हर-एक आश्रममें रह सकती है और हर-एक आश्रममें उसका त्याग भी किया जा सकता है। अतः यह दोहा गृहस्थका निषेध नहीं करता।

१२–जिन-जिन संत, ऋषि और मुनियोंको कामदेवने सताया है, उनमें अपने-अपने गुणोंका अभिमान हुआ है। उस अभिमानका नाश करनेके लिये प्रभुकी कृपाशक्तिने उनके सामने वैसी परिस्थिति उपस्थित करके उनके अभिमानका नाश किया और उनको आगे बढ़नेका मार्ग प्रदर्शित किया है तथा भविष्यमें होनेवाले साधकोंको यह पाठ पढ़ाया है कि वे कभी अपनेमें गुण देखकर उसका अभिमान न करें और दूसरोंके दोषोंको न देखें। यही इसका गूढ़ रहस्य प्रतीत होता है।

जो साधक प्रभुका हो गया है, समस्त सद्‌गुण प्रभुकृपासे जिसके जीवन बन गये हैं, किसी भी सद्‌गुणका जिसमें अभिमान नहीं रह गया है, उस प्रभु-आश्रित साधकको कोई भय नहीं रहता। वह तो सदैव सर्वथा निर्भय और निश्चिन्त हो जाता है।

जिसने कामनाका सर्वथा त्याग कर दिया है, उस साधकको काम नहीं सता सकता; क्योंकि उसका कामसे सम्बन्ध-विच्छेद हो गया है।

आप जो निश्चिन्त रहकर प्रभुमय जीवन और सेवा-परमार्थमय जीवन, प्रभुकी अनन्य भक्ति तथा मायामय जीवनसे छुटकारा चाहते हैं, यह बड़ी अच्छी बात है। इस इच्छाकी पूर्ति अन्य समस्त इच्छाओंका त्याग करके एकमात्र प्रभुके शरण हो जानेपर बड़ी ही सुगमतासे हो सकती है।

आशीर्वाद देनेकी मुझमें सामर्थ्य नहीं है। ईश्वरकी

कृपाशक्ति हर समय हर-एक साधकको आशीर्वाद दे रही है। उसका आदर कर लेनेपर दूसरेके आशीर्वादकी आवश्यकता नहीं रहती।

१३—व्यावहारिक दशामें रहते समय जो मन दूसरी ओर चला जाता है, प्रभुसे हट जाता है, इसका कारण यह है कि साधक व्यावहारिक कार्यको अपने सुखके लिये आसक्तिपूर्वक करता है, उसे प्रभुका काम समझकर केवल प्रभुकी प्रसन्नताके लिये नहीं करता। इस हैरानीको मिटानेका उपाय ऊपर बताया गया है कि किसी भी कार्यको स्वार्थबुद्धिसे आसक्तिपूर्वक न करे, प्रभुकी सेवाके रूपमें उन्हींकी प्रसन्नताके लिये करे।

साधनके सम्बन्धमें विभिन्न शास्त्रोंमें विभिन्न बातें तो इसलिये आयी हैं कि साधकोंकी प्रकृति, रुचि और योग्यतामें भेद होता है; अतः सबके लिये एक साधन उपयोगी नहीं हो सकता। इसलिये साधकको चाहिये कि उन भिन्न-भिन्न साधनोंमेंसे जो एक साधन उसकी अपनी प्रकृतिके अनुकूल हो, जिसपर उसका विश्वास और रुचि हो, जिसको वह सुगमतापूर्वक कर सकता हो, जो उसे स्वभावसे ही प्रिय हो, उसको अपना ले। साधनमें कठिनाई नहीं होती।

१४—पछताना तो उसे पड़ता है जो सांसारिक भोगकी आशासे किसी नवीन परिस्थितिको बुलाता है। उसे कभी पश्चात्ताप नहीं करना पड़ता जो प्रभुके मङ्गल विधानके अनुसार प्रभुकी इच्छासे अपने-आप आनेवाली परिस्थितिको प्रभुका प्रसाद मानकर प्रभुके आज्ञानुसार उन्हींकी प्रसन्नताके लिये उसका उपयोग करता है; क्योंकि उसके लिये तो वह साधनरूप है।

१५—नाम-जपके विषयमें मेरी यह सम्मति है कि जिस नामका जप आप बिना किसी परिश्रमके बड़ी सुगमतासे कर सकें, जिसका जप करते समय प्रभुका स्मरण स्वभावसे ही होता हो, प्रभु-प्रेम उमड़ता हो, उसी नामका श्रद्धा-भक्तिपूर्वक जप करना आपके लिये ठीक है। यदि प्रसङ्गवश दूसरे नाम आ जायँ तो वे भी उतने ही प्रिय होने चाहिये। नामोंमें भेदबुद्धि नहीं होनी चाहिये।

१६—प्रभुके सगुण साकार रूपकी उपासना करना आपको रुचता है तो बहुत अच्छी बात है। जिस रूपकी उपासनामें आपकी स्वाभाविक श्रद्धा और प्रेम हो, उसीकी उपासना—ध्यान, चिन्तन, स्मरण करना चाहिये। उनके गुण, प्रभाव, तत्त्व और रहस्यको समझना चाहिये अर्थात् उनकी महिमापर अटल विश्वास करना चाहिये। जितना-जितना साधकको अपनी कमजोरियोंका अनुभव होता जाता है, उतना-उतना ही प्रभुकी महिमापर विश्वास बढ़ता जाता है।

प्रभुकी शरण ग्रहण कर लेनेके बाद सभी परिस्थितियाँ साधन-सामग्री बन जाती हैं, फिर कोई भी परिस्थिति जंजाल नहीं प्रतीत होती। प्रभुमें प्रेम होनेपर ही आठों पहर साधन हो सकता है, फिर कोई कठिनाई नहीं रहती। आश्रम तो कर्त्तव्यपालनके लिये स्वाँग है। आपको इस दुविधामें नहीं पड़ना चाहिये कि मैं किस आश्रममें रहूँ। प्रभुकृपासे जो आश्रम प्राप्त हो, उसीको साधन-सामग्री मानकर प्रभुके नाते कर्त्तव्यपालन करते रहना चाहिये। भयभीत होना साधकका काम नहीं है। त्याग करने योग्य है—भोगकामना और ग्रहण करनेयोग्य है—प्रभुका प्रेम।

प्रभुपर विश्वास कर लेनेके बाद निराश होना तो प्रभुकी दयाकी महिमाका अनादर करना है। अतः निराश नहीं होना चाहिये। पूजा-पाठ, नाम-जप और ध्यान आदि साधनोंमें कमी नहीं होनी चाहिये।

यहाँतक आपके पिछले पत्रका उत्तर हुआ है। पहले पत्रमें आपने जो कुछ पूछा था, उसका उत्तर भी इसीमें आ गया। इसलिये अलग उत्तर नहीं लिखा।

है। उसमें आपने अपने बहुत-से विचार प्रकट किये और अपनेको प्रभुके समर्पण कर दिया लिखा सो यह बहुत अच्छा है।

(२)

सादर हरिस्मरण। आपके पहले मिले हुए पत्रका उत्तर लिखवा देनेके बाद यह तीसरा पत्र प्राप्त हुआ। समाचार विदित हुए। उत्तर नीचे लिखा जाता है—

भगवान्की कृपासे जब सत्सङ्ग मिलता है, तब नाममें रुचि उत्पन्न होती है। अतः सत्सङ्गकी विशेष चेष्टा रखनी चाहिये। नाममें प्रेम होनेके बाद पढ़ाई उसमें विघ्न नहीं कर सकती। माता-पिताकी प्रसन्नतामें प्यारे प्रभुकी प्रसन्नताका अनुभव करते हुए यदि पढ़ा जाय तो वह भी साधन बन सकता है। विघ्न तो अपनी आसक्ति और अहंकारके कारण आते हैं।

नाम-जपके लिये घर छोड़ना आवश्यक नहीं। उनमें जो ममता और आसक्ति हैं, उन्हें छोड़ना आवश्यक है। नामजप तो साधकका जीवन होना चाहिये। उसके अनुष्ठानका चार-पाँच वर्षका ही सीमित संकल्प क्यों? उसको तो नित्य-निरन्तर सदा-सर्वदा ही करना चाहिये। साधनके लिये परिस्थिति बदलना आवश्यक नहीं है, भाव बदलना आवश्यक है। जो घरमें रहते हुए नामजप नहीं कर सकता, वह घर छोड़नेपर कर सकेगा, ऐसी आशा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियाँ तो वह जहाँ जाता है, वहीं, उसके साथ रहती हैं।

नाम-जपका अनुष्ठान करनेके लिये समस्त पदार्थोंसे और व्यक्तियोंसे ममता और आसक्तिका त्याग करना तथा भगवान्को अपना मानना और उनसे प्रेम करना एवं दूसरोंके मनकी बात जो उनके लिये हितकर हो, यथाशक्ति प्रभुकी प्रसन्नताके लिये पूरी करते रहना, बदलेमें कुछ चाहना नहीं। जिसके मनकी बात पूरी की जाय, उसपर कभी अहसान भी नहीं करना चाहिये। किसी भी गुणका अभिमान न करना, दूसरोंके दोषोंको न देखना, अपने दोषोंको देखना और उनको छोड़ना चाहिये। ऐसा करनेपर सब काम सिद्ध हो सकते हैं। फिर प्रभुकी मधुर स्मृति भी अपने-आप होने लगती है।

'हरे राम'—मन्त्र या जिस नाममें आपकी रुचि हो उसीका जप कर सकते हैं। जिस सद्ग्रन्थसे आपको नाम-जपमें रुचि प्राप्त हुई हो, उसीको गुरु बना सकते हैं, वैसे तो आपका विवेक भी आपका गुरु है; उसकी बात मानते रहिये।

जप चाहे आप वाणीद्वारा करें, उपांशु करें या मानस करें पर उसमें श्रद्धा और रुचि अवश्य होनी चाहिये। जिसमें मन अधिक लगे, प्रकार वही ठीक है; हठपूर्वक करना ठीक नहीं।

जप मालापर करनेमें सुगमता हो तो मालापर करें, बिना मालाके सुगमता हो तो बिना मालाके करें। संख्या तो इसलिये रक्खी जाती है कि इस बहानेसे जप अधिक हो जाय। यदि निरन्तर जप करना हो या होना हो तो संख्या रखना कोई खास बात नहीं है।

खाने-पीनेकी वस्तुएँ पवित्र और सात्त्विक होनी चाहिये। सोना उतना ही चाहिये, जितना शरीर-निर्वाहके लिये आवश्यक हो। बिना जरूरतके बोलना, चलना, कहीं जाना-आना, किसीसे मिलना-जुलना नहीं चाहिये। आवश्यक होनेपर ही सब कुछ केवल दूसरोंके मनकी बात पूरी करनेके लिये उनको हितपूर्ण सुख पहुँचानेके लिये प्रभुप्रीत्यर्थ ही करना चाहिये, अपने सुखभोगके लिये नहीं।

जपके साथ जो आवश्यक साधन हैं, वे ऊपर लिखे हुए हैं ही।

पढ़ो, समझो और करो

(१)

आदर्श सहानुभूति

राशनकी दूकानपर एक प्रेरणादायक दृश्य देखा गया। लाइनमें ऊँचे वर्गका खास कोई आदमी नहीं था। पिछड़े वर्गके स्त्री-पुरुष खड़े थे। मशीनकी तरह घड़ीके काँटेकी ज्यों राशनकार्ड दिये जा रहे थे और लाइन छोटी होती जा रही थी। दस-बारह वर्षकी एक मजदूर लड़कीकी पारी आयी। उसे चीनी लेनी थी, परंतु उसके पास थैली नहीं थी। दूकानदार लड़कीके फटे-पुराने कपड़े देखकर यह समझ गया था। उसकी चीनी अभी तौली नहीं गयी थी। इसी बीच एक उच्च वर्गकी युवती बहिनने लाइनकी परवा न करके आगे बढ़कर रोबके साथ कहा—'मुझे नौकरीमें देर हो रही है। जल्दी चीनी तौल दो। यह लो कार्ड।' दूकानदारने कहा—'आप लाइनमें खड़ी रहिये।' उसने कहा—'तुम्हें पता नहीं है कि मैं गवर्नमेंट सरवेंट हूँ। मेरे समयकी कीमत होती है। फिर मेरे मिस्टर तुम्हें बहुत ही अच्छी तरह पहचानते हैं।' परंतु दूकानदार दूसरी ही नीतिका आदमी था। उसने कहा—'अभी तो मैं लाइनमें खड़े इन्हीं लोगोंको पहचानता हूँ। दो घंटेसे ये तप रहे हैं; इनकी मजूरी जाती है, इनके छोटे बच्चे रोते हैं। इसलिये मैं आपका काम पहले नहीं कर सकता।'

तुनककर वह युवती चली गयी। दूकानदारने उस मजदूरिन-जैसी लड़कीको कागजकी थैलीमें चीनी दे दी। वह लड़की सीढ़ीसे उतर रही थी कि फिसलकर गिर पड़ी। उसकी सारी चीनी धूलमें मिल गयी। वह लड़की रोने लगी। आस-पासका वातावरण गम्भीर हो गया। लड़कीने रोते-रोते कहा—'मेरी माँ बहुत ही बीमार है, बाप है नहीं। बड़ा भाई मजदूरीपर गया है। घरमें जरा-सी भी चीनी नहीं है। मैं माँको चाय कैसे पिलाऊँगी?'

वह दूकानदार बाहर निकला और लड़कीके करुण चेहरेकी तरफ देखता रहा। जरा-सी देरमें ही उसके अंदरकी चेतना जागी। उसने अपने सहायकसे कहा—'मेरे कार्डकी चीनी ली नहीं है। उसमेंसे ५०० ग्राम चीनी इस लड़कीको तौल दो। मुझे कमी पड़ेगी तो मैं ब्लैकसे ले लूँगा। दूकानदार न तो उस लड़कीको जानता-पहचानता था, न उसकी माँको ही; परंतु लड़कीके करुण चेहरेपर छाये हुए भावको वह पहचान रहा था।

(अखण्ड आनन्द)

—चन्द्रकान्त वी० त्रिवेदी

(२)

साहसी देवीके द्वारा आदर्श सेवा

कुछ समय पूर्वकी घटना है। लगभग पंद्रह सालका एक लड़का जामनगरसे बम्बई गया हुआ था। एक दिन उसे सवेरे ७-५५ की गाड़ीसे दादरसे बोरीवली जाना था। भीड़ बहुत अधिक थी। अतः वह हैंडल पकड़कर रेलके डिब्बेके बाहर पाटियेपर खड़ा होकर लटक गया।

लोकल ट्रेन ज्यों ही परेल और करी रोड स्टेशनके बीच पहुँची कि उसके हाथसे हैंडल छूट गया और वह पूरे वेगके साथ दौड़ती हुई ट्रेनसे फेंका जाकर दूर जा गिरा।

दूसरे लोगोंकी चीख-पुकारके पहले ही गाड़ी आगे निकल गयी। लड़का फेंका जाकर सामनेकी दूसरी लाइनके ठीक बीचमें गिर पड़ा।

इसी समय उस लाइनपर भी दूसरे एक लोकल ट्रेन चली आ रही थी। परंतु भगवान्‌का विधान—वह लड़का जिस डिब्बेसे गिरा था, उसीमें एक युवती भी मुसाफिरी कर रही थी। उसने इस दृश्यको देखते ही तुरंत ट्रेनकी साँकल खींची। इससे गाड़ीकी चाल कुछ धीमी हुई; पर गाड़ीके पूरी रुकनेसे पहले ही वह साहसी युवती नीचे कूदकर, वह लड़का जहाँ लाइनके बीचमें पड़ा था, उधर बड़े जोरोंसे दौड़ने लगी। ठीक इसी समय वह लोकल ट्रेन भी उसी लाइनपर आगे बढ़ी चली आ रही थी।

युवती और लोकल ट्रेन दोनोंकी चालमें बड़ी तेजी थी। एक-एक पलक मूल्यवान् था, पर दूसरेको बचानेके लिये अपना जीवन उत्सर्ग करनेवाली वह देवी लोकल ट्रेनसे पहले ही वहाँ पहुँच गयी और लाइनके बीचमें पड़े हुए लड़केको तुरंत उठाकर उसने अलग कर दिया। बस, इसी क्षण वह लोकल वहाँसे निकल गयी। उस समय कुछ ही क्षणों पूर्व इस देवीने इतना बड़ा साहस करके यदि लड़केको लाइनके बीचसे उठाकर अलग न किया होता तो उसके शरीरके टुकड़े-टुकड़े हो जाते···।

फिर तो कुछ दूरपर जाकर वह लोकल ट्रेन रुकी। इस देवीने लड़केको उठाया और दूसरी कोई माथापच्ची न करके तुरंत उसे लेकर वह परेलकी ओर जानेवाली ट्रेनमें सवार हो गयी। गाड़ी परेलकी ओर दौड़ने लगी। चलती गाड़ीमें इस देवीने अपनी साड़ीका छोर फाड़कर उस लड़केके घावपर बाँध दिया।

परेल आते ही तुरंत लड़केको लेकर वह नीचे उतरी और उसे परेलके अस्पतालमें ले गयी। चार बजे लड़केको होश आया। लड़केकी जेबमें रेलवेका पास और उसका बम्बईका नाम-पता मिला। अतः अस्पतालकी ओरसे उसके घरवालोंको सूचना दे दी गयी। सगे-सम्बन्धियोंके आनेपर लड़केने चारों ओर देखा और पहला ही प्रश्न किया 'वे देवी कहाँ गयीं।'

परंतु वह तो चली गयी थी। उसे न तो इनाम लेना था, न प्रशंसाके शब्द ही सुनने थे। ऐसी मूक सेवा, जिसमें सेवा करनेवालेका पता ही न चले,—बड़े महत्त्वकी होती है। 'भागवत-झाँकी'

—हरिनारायण शर्मा

(३)

रामनामका आश्चर्यफल

मैं बारह वर्षकी बच्ची थी। एक दिन माँ और एक पण्डितको बात करते सुना—'कैसी भी विपत्ति आयी हो, रामचरितमानसके सुन्दरकाण्डका पाठ मानसकी—

मंत्र महामनि बिषय ब्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के॥

—इस अर्धालीका सम्पुट देकर किया जाय तो वह विपत्ति अवश्यमेव टल जाती है और मनोवाञ्छित फल मिलता है।'

सन् १९३३ में मेरा विवाह हुआ। विवाहके पहले जब मेरे पतिकी जन्मकुण्डलीके ग्रह देखे गये थे, तब उस समयके पण्डितोंने कहा था कि 'विवाहके ठीक दस वर्ष बाद लड़केको बहुत जोरकी बीमारीका योग है।' बात आयी और चली गयी।

आया १९४३ का फरवरी मास। उस समय मेरे पति मुन्सिफ थे। एक दिन शामको पड़ोसिनोंने आकर कहा—'आप शुद्ध खादीधारिणी गाँधीवादी हैं। गाँधीजीका उपवास चल रहा है।—कदमकुँआके श्रीराममन्दिरमें उनके जीवनके लिये प्रार्थना हो रही है—आप चलिये।' पतिदेव बोले 'जरूर जाओ।' मैं तुरंत तैयार हो गयी। उन लोगोंके साथ श्रीराममन्दिरको चल पड़ी। मन्दिरमें पहुँची, वहाँ सामूहिक प्रार्थनाके रूपमें कीर्तन चल रहा था—

'रघुपति राघव राजा राम। पतितपावन सीताराम॥

मैं भी आनन्द-विभोर होकर प्रार्थना-कीर्तन करने लगी। प्रार्थना समाप्त होनेपर सुना कि प्रातःकाल गाँधीजीका उपवास सानन्द समाप्त हो जायगा और इस उपलक्ष्यमें प्रातःकाल मन्दिरमें हवन होगा। प्रार्थना-कीर्तन तथा प्रसाद-वितरण होगा। दूसरे दिन मैं सुबह चार बजे ही तैयार होकर मन्दिर गयी। खूब कीर्तन किया। बहनोंसे मिली। प्रसाद लेकर घर आयी। मुझे दिसम्बरमें पाँचवाँ बच्चा हुआ था। मैं थी कमजोर। पतिने मुझे फरवरीमें अपने घर राँची भेज दिया था। पंद्रह दिनोंके बाद मुझे पत्र मिला कि ये बीमार हैं, पेटमें दर्द और बुखार है। पटना आते-आते मुझे पंद्रह दिन और लग गये। तारपर जेठजीने भेजा। मैं बड़े लड़के और लड़कीको राँची छोड़कर पटना पहुँची। इनकी दशा देखकर मैंने सिर पीट लिया। ये सूखकर काँटा हो गये थे। मैंने यथासाध्य सेवा-शुश्रूषा शुरू कर दी। इनकी बदली बिहारशरीफ प्रथम श्रेणीके मुन्सिफके रूपमें हो चुकी थी। घरका सारा सामान बिहारशरीफ भेजा जा चुका था। रसोइया और नौकर इनकी बीमारीके कारण परेशान हो रहे थे। इनका इलाज उस समयके पटना-अस्पतालके डा० श्रीगयाप्रसादका चल रहा था। फायदा न देख मैं स्वयं पटना-अस्पताल गयी। आँख-नाक-कानके विशेषज्ञ डा० पारसनाथसे मिलकर इन्हें काटेजमें रखवानेकी व्यवस्था कर एम्बुलेन्स कार लेकर घर आयी। साहेब बोले—'परंतु आज शनिवार है—मेरे पास पैसे नहीं हैं।' मैं तुरंत, हमारे बगलमें रिजेन्ट सिनेमाके मैनेजर महोदय रहते थे, उनके यहाँ गयी। उनको रिजेन्ट सिनेमामें फोन करके पाँच सौ रुपये माँगे। वे तुरंत मोटरसे आकर रुपये दे गये। मैंने इनको पटना-अस्पतालके काटेजमें भर्त्ती करवाया। उस समय पटना मेडिकल कालेजके प्रिन्सिपल स्व० डा० टी० एन० बनर्जी महोदय थे। सर्जरीके डाक्टर कैप्टन पाल थे। डा० टी० एन० बनर्जीसे मैं कई बार इलाज करा चुकी थी। अतः उनसे खूब परिचित थी। इन्हें उनके हाथोंमें सौंप मैं मुजफ्फरपुर मैके जाकर तीनों बच्चोंको वहाँ पहुँचा आयी।

लौटकर आयी, देखा इनकी स्थितिमें कोई परिवर्तन नहीं है। मुझे डा० वनर्जी एवं कैप्टन पालने बुलाकर कहा—'बेटी ! इनके पेटका आपरेशन करना पड़ेगा—नहीं तो, ३६ घंटेके बाद ये नहीं बचेंगे।' मैं रोने लगी। उन्होंने यह भी कहा—'अपने बाबाबाड़ी (मैके) या श्वशुर-बाड़ी (ससुराल)मे किसीको बुला लो।' मैं बोली—'मेरे माता-पिता तो हैं नहीं, चचा हैं। वे ४२ के आन्दोलनमें मोतीहारी जेलमें हैं। ससुरालमें सास-ससुर भी नहीं, सौतेले जेठ हैं। उन्हें पत्र-तार दिया था—आये नहीं।' यह कहकर मैं उन दोनोंके पैरोंपर लिपटकर रोने लगी।

उन्होंने मुझे बहुत सान्त्वना दी, कहा—'तुम भगवान्से प्रार्थना करो, वही तुम्हारे सौभाग्यकी रक्षा करेंगे।'

आया १८ मई। १९ मईको आपरेशन होनेवाला था। १८ मईको मेरे जेठ दोनों बच्चोंको लेकर आये। ये काटेजसे सर्जिकल वार्डमें लाये गये। मैं रोये जा रही थी। मैं सिस्टरों, नर्सों, जमादारोंको पकड़कर पूछती—'मेरे पति आपरेशनसे अच्छे हो जायँगे ?' सभी एक ही उत्तर देते—'भगवान्-भगवान् कहिये, उन्हींसे प्रार्थना कीजिये।'

उस समय आज-जैसी शल्य-चिकित्सा सुलभ नहीं थी। उसमें मेरे पतिको पेटमें दर्द और बुखारका चौंसठवाँ दिन था।

सभीके द्वारा 'भगवान्से प्रार्थना करो'—यह उत्तर सुनते ही मेरे मनको एक झटका लगा—मानो आँखोंमें नयी ज्योति आ गयी। बचपनके मानसके सम्पुट पाठकी बात याद आ गयी कदमकुआँके राममन्दिरका—

'रघुपति राघव राजा राम। पतितपावन सीताराम ॥'

मन्त्र भी याद आ गया। जब इस मन्त्रके प्रभावसे गाँधीजी जीवित रह सकते हैं तो मेरे पति क्यों नहीं अच्छे होंगे ? यह विचार आते ही मेरे मनमें बिजली-सी स्फूर्ति तथा शक्ति आ गयी। मैंने आँसू पोंछ लिये।

आपरेशनके दिन ५ बजे सुबह उठकर मैंने स्नानादि कर बच्चोंको तैयारकर जेठके जिम्मे लगाया। उनसे कहा—'मैं तो राममन्दिर जा रही हूँ—मुझे बुलाइयेगा नहीं।' मैं राममन्दिर चली गयी।

'राममन्दिर पहुँचकर प्रथम तो मैंने एक पण्डितजीको सुन्दरकाण्डके इस सम्पुट पाठका संकल्प देकर बैठाया—

मंत्र महामनि विषय ब्यालु के।
मेटत कठिन कुअंक भालु के॥

मैं स्वयं भगवान्के सामने बैठ गयी। उनके पंखेकी डोरी पकड़ ली और—'रघुपति राघव राजा राम।
पतितपावन सीताराम ॥'

—का कीर्तन करने लगी—आठ बजे, नौ बजे, दस बजे। एक मोटर राममन्दिरके दरवाजेपर आकर रुकी। मेरे दोनों बच्चे एवं जेठका लड़का आकर बोला—'डा० टी० एन० बनर्जीने अपनी गाड़ी भेजी है—चचा आपरेशन टेबलपर सोये हैं—आकर आप आपरेशनके पहले एक दूसरेको देख लें।' मैंने इशारेसे जाना इन्कार कर दिया। वे चले गये। बच्चे दोनों पास थे। पुजारीजीका सम्पुट पाठ समाप्त हो चुका था। १२ बजे भगवान्का भोग लग गया। पट बंद हो गये। परंतु मेरा कीर्तन चल रहा था। मन्दिरमें बहुतेरे लोग आने लगे—मुझे जल, शर्बत, फल ला-लाकर देने लगे, परंतु मेरा मन तो अमोघ मन्त्र-जपमें लगा था। आनेवाले भी सभी प्रार्थनामें शामिल होते चले गये। एक बजा, दो बजे, तीन बजे, चार बजे। मन्दिरका पट खुल गया। मेरा गला सूख रहा था। पंखेकी डोर छूट-छूट पड़ती थी। अज्ञात भयसे बार-बार मैं सिहर रही थी। सभी दर्शकोंके चेहरोंपर भय आच्छादित था।

पाँच बजे सहसा 'मुन्सिफ साहबकी पत्नी कहाँ है ?' कहता हुआ अठारह वर्षका एक गौरवर्ण युवक मेरे पास आकर खड़ा हो गया। मुझसे बोला—'माँजी ! उठिये। मुन्सिफ साहब आपरेशन टेबलसे चले आये हैं। वे डाभ (कच्चे नारियल) का पानी पी रहे हैं। लोगोंसे बातें कर रहे हैं !' सुनते ही मैं भगवान्के सामने गिर गयी। बहनोंने उठाया। मैंने उस लड़केसे पूछा—'तुम कौन हो ?'

'मेरे पिताजी भी अस्पतालमें भर्ती हैं। अस्पतालमें हल्ला हुआ कि आप यहाँ प्रार्थना कर रही हैं, तब पिताजीने यहाँ मुझे भेजा है।'

भगवान् हँस पड़े। अमोघ मन्त्र हँस रहा था। मैं काँपती हुई मुसकरा उठी।

दिन बीतते गये। सम्पुट पाठ और अमोघ मन्त्र—मेरे अमोघ कवच-कुण्डल बन गये। दिन-पर-दिन वर्ष-पर-वर्ष बीतते गये। इन्हीं कवच-कुण्डलोंसे अपनी, अपने पतिकी तथा बच्चोंकी रक्षा करती हुई मैंने महान् कार्य किया। इस बीच मेरे पति दस वर्ष डिस्ट्रिक्ट सेशन जज रहे। ला सेक्रेटरीसे अवकाश ग्रहण किया। इन दिनोंमें 'प्रिजाइडिंग

अफसर, सेन्ट्रल गवर्नमेंटके इन्डस्ट्रियल ट्रिबुनल-कम-लेबर कोर्ट', धनवादमें हैं।

इन्हें फिर गत पाँच वर्षोंसे पेटमें दर्द शुरू हुआ है। यहाँ आनेपर असहनीय हो गया। डाक्टरोंने पुराना हार्निया, अपेंडिक्स, आँतके मांसके सड़नेका कारण पहलेके आपरेशनकी गलती बताया।

धनवादके सेन्ट्रल अस्पतालमें गत चार दिसम्बर १९६९ बृहस्पतिवारको मेरे पति पुनः आपरेशन-टेबलपर गये। साढ़े चार घंटे आपरेशन होता रहा। मैं वहीं रामायणका सम्पुट पाठ एवं 'रघुपति राघव राजा राम'—का मन्त्र जपती रही।

डा० प्रामाणिकने सहसा आकर मुझे बधाई दी। आपरेशन खूब अच्छा रहा—अब आगेके लिये वे बिल्कुल अच्छे हो गये।

बोलिये राजा रामचन्द्रकी जय।

—श्रीअन्नपूर्णा सिन्हा

(४)

ईमानदारीका आदर्श उदाहरण

सन् १९६४-६५ की घटना है।

मैं राजस्थानके एक विद्यालयमें विज्ञानके वरिष्ठ अध्यापक-के पदपर कार्य कर रहा था। विद्यालय ग्रामीण क्षेत्रमें स्थित होनेके कारण उसपर ग्रामीण वातावरणका काफी प्रभाव था।

विज्ञानकी प्रयोगशालामें दो प्रयोगशाला सहायक थे, पर चपरासी एक भी नहीं था। एक था, वह कुछ दिनों पूर्व त्यागपत्र देकर अपने गाँव चला गया था। वहीं खेती-बाड़ी करने लगा। उसे राजकीय पराधीनता स्वीकार नहीं थी।

वह गाँव राजपूतों एवं जाटोंका था। कोई भी व्यक्ति चपरासी बनना अपनी प्रतिष्ठाके विरुद्ध समझता था। भूखों मरना स्वीकार, पर चपरासी बनना मंजूर नहीं।

कुछ दिनतक तो जैसे-तैसे काम चलाया गया, परंतु आखिर तंग आकर उच्चाधिकारियोंको लिखना पड़ा। इस-पर विद्यालयके प्रधानाचार्य महोदयको सलाह दी गयी कि किसी स्थानीय व्यक्तिको ही इस कार्यके लिये तैयार कर लिया जाय। उसकी नियुक्तिका स्थायी आदेश-पत्र कार्यालयसे भेज दिया जायगा। हमने आज्ञा शिरोधार्य करके ऐसे व्यक्तिकी खोज-बीन शुरू की।

एक अध्यापक मित्रने दौड़-धूपकर आखिर एक व्यक्तिको लाकर मेरे सामने खड़ा कर दिया। उसका नाम था हरिराम, जातिका चरवाहा और आयु लगभग २०-२२ वर्ष। उसकी वेशभूषा बिल्कुल ग्रामीण थी। फटी हुई घुटनोंतक मैली धोती, कमरपर चादर और सिरपर लाल साफा। हरिरामको नौकर रख लिया गया।

प्रयोगशालाके आवश्यक कार्य उसे बतला दिये गये। वह लगन तथा रुचिपूर्वक कार्य करने लगा। धीरे-धीरे उसने अपनेको विद्यालयके वातावरणमें ढाल लिया। प्रयोग-शालाके कई यन्त्रों तथा रासायनिक पदार्थोंसे भी भलीभाँति वह परिचित हो गया। कोई भी वस्तु माँगी जाती, वह तुरंत लाकर दे देता। अन्य अध्यापक बन्धु जो भी उसे कार्य करनेको कहते, वह शीघ्र उसे कर देता। अपने समयका भी वह बड़ा पाबन्द था। विद्यालय कभी भी विलम्बसे नहीं आया।

इस प्रकार एक वर्ष व्यतीत हो गया। इसके पश्चात् एक दिन एक घटना घटी, जिसे मैं जीवनभर विस्मृत नहीं कर सकता। विद्यालयके सामने ही आम रास्ता था, जिसपर हर समय यातायात चालू रहता था।

विद्यालयके समीप ही छात्रावास था। अकेला होनेके कारण मैं भी छात्रावासके एक कमरेमें रहता था और छात्रोंका अध्ययनमें मार्ग-दर्शन भी करता था।

एक दिन मैं रात्रिके समय अपने कमरेमें अध्ययन-रत था, इतनेमें ही कमरेमें हरिराम आ उपस्थित हुआ।

इससे पूर्व कि मैं उसे पूछूँ कि वह इतनी रात्रि गये यहाँ क्यों आया, वह धीरे-धीरे मेरे पास आया और कहने लगा कि 'विद्यालयके सामने सड़कपर उसे एक वस्तु मिली है।'

मैंने हँसते हुए पूछा !—'वह क्या वस्तु है ?।' इसके प्रत्युत्तरमें उसने मेरे सामने मेजपर एक मोटा-सा बटुआ रख दिया। मैंने उसे खोलकर देखा तो उसमें पूरे १४० रुपये थे और कुछ रेजगारी थी।

मेरे मस्तिष्कमें अचानक कई विचार कौंध गये।

मैंने उससे कहा—'अब इसका क्या करना चाहिये ?' उसने अपने स्वाभाविक भोलेपनसे कहा—'जैसा आप उचित समझें।'

'तुम्हें ये रुपये आम रास्तेपर पड़े मिले हैं, अतः ये तुम्हारे ही हैं । तुम इन्हें अपने घर ले जाओ ।' मैंने उसके मनको टटोलते हुए कहा ।

उसने गम्भीर होकर कहा —'मास्टर साहब ! नहीं, हरगिज नहीं । मेरा इन रुपयोंपर कोई अधिकार नहीं है । जिसके ये रुपये खोये होंगे, वह कितना दुखी होगा । आप किसी भी प्रकारसे इन रुपयोंको इनके असली मालिकके पास भिजवानेका प्रबन्ध कीजिये ।'

मैंने हरिरामकी ईमानदारीकी मन-ही-मन प्रशंसा की । मैंने रुपये अपने पास रख लिये और सोचा कि 'कलतक यदि इनके मालिकका पता न लगा तो इस बटुएको थानेमें जमा करा दूँगा ।'

सुबह एक जीप-ड्राइवर आया । वह अपने खोये हुए बटुएकी वहाँ पूछ-ताछ करने लगा ।

बटुएपर उस जीप-ड्राइवरका नाम और पता लिखा हुआ था । पूरी जाँच कर चुकनेके पश्चात् मैंने वह बटुआ उस ड्राइवरको दे दिया । इनामके बतौर उसने दस रुपये हरिरामको देने चाहे, पर उसने लेनेसे इन्कार कर दिया ।

जीप-ड्राइवर प्रसन्नतापूर्वक बटुआ लेकर अपने घर चला गया और हरिरामकी ईमानदारीकी सर्वत्र प्रशंसा करने लगा; क्योंकि जीप-ड्राइवर उस गाँवका ही निवासी था । उन दिनों हरिरामपर एक बनियेका कर्ज भी था । ऐसी परिस्थितिमें उसकी ईमानदारी एवं कर्तव्य-निष्ठा सराहनीय है ।

उस विद्यालयको छोड़े मुझे चार वर्षके लगभग हो गये हैं, पर हरिरामकी ईमानदारीका यह आदर्श उदाहरण अभी भी मेरे मानस-पटलपर ज्यों-का-त्यों अङ्कित है । वास्तवमें ईमानदारीका यह एक आदर्श उदाहरण है ।

—श्याममनोहर व्यास, एम० एस-सी०, बी० एड्०
वरिष्ठ अध्यापक (विज्ञान-विभाग)

(५)

आदर्श निःस्वार्थ व्रत

गुजरातके एक अग्रगण्य साहित्यकार तथा विद्वान्के रूपमें स्व० मटुभाई काँटावालाका नाम संसारमें प्रसिद्ध है । साहित्यकार होनेके साथ ही वे एक उद्योगपतिके रूपमें भी उतने ही विख्यात थे ।

आजसे लगभग पैंतालीस वर्ष पहलेकी बात है । उस समय उनके जीवनका मध्याह्न तप रहा था । बड़ोदामें उनका मिल-उद्योग था । वे दो-दो मिलोंका संचालन करते थे । राजा और प्रजा दोनोंमें सम्मानपात्र थे ।

बंबईके एक गृहस्थका इनके हाथों बड़ा उपकार हुआ था । उन्हें इनसे बहुत बड़ा लाभ हुआ था । उन गृहस्थकी इच्छा यत्किञ्चित् बदला चुकानेकी हुई । उन्होंने सोचा 'यों ही सीधे-सीधे कुछ देना चाहूँगा, तो वे कभी नहीं लेंगे ।' इनके अपरिग्रह-व्रतकी बात वे जानते थे । अतएव लगभग पचहत्तर वर्षके वे बूढ़े गृहस्थ स्वयं बड़ोदा आकर मकरपुरामें ठहरे । मटुभाईसे मिलने मिलमें गये और निःस्वार्थ भावसे उनका काम कर देनेके लिये उन्होंने मटुभाई-के प्रति आभार प्रदर्शित किया ।

मटुभाईने उत्तर दिया—'इसमें आभार माननेकी कोई जरूरत नहीं है । किसीका काम कर देना तो मनुष्यका कर्तव्य है । उसे करते समय जैसा होना चाहिये, वैसे सात्त्विक आनन्दका मैंने अनुभव किया था । किसी भी काममें परिश्रम तो अवश्य होता है, परंतु वह काम यदि सच्ची दिशामें होता है और उसके पीछे यदि सत्यका आधार होता है, तो उसे करना ही चाहिये । मुझसे बन पड़ा सो किया और प्रभुने उसमें यश प्रदान किया । ईश्वर तो सबके हैं । आपका भाग्य भी तो था ही ।'

'सेठ साहेब ! मैं बंबईसे आपके लिये थोड़ेसे फल लाया हूँ । आपके घर भेजूँगा । आपको उन्हें स्वीकार करना ही पड़ेगा ।'

'मैं किसीका कुछ भी स्वीकार नहीं करता । मेरा यह जीवनका व्रत है । परंतु आप वयोवृद्ध हैं, प्रेमके वश हैं, फिर बंबईसे बड़ोदा तक आनेकी आपने तकलीफ उठायी है । अतः मैं घरपर कहला देता हूँ कि आपके फलोंका अनादर न किया जाय ।'

नमस्कार करके गृहस्थने विदा ली । उसके मनमें अपार आनन्द हो रहा था ।

मटुभाईने अपने बड़े पुत्र कान्तिभाईसे कह दिया कि 'बंबईवाले गृहस्थ यदि फल भेजें तो उन्हें रख लिया जाय ।'

उन गृहस्थने फलोंका एक बड़ा टोकरा मटुभाईके घर भेज दिया ।

उसका स्वीकार भी हो गया। उसके बाद कान्तिभाईने टोकरा खोला तो उसमें तरह-तरहके सुन्दर फल थे, उन्हें बाहर निकालनेपर एकदम नीचे बड़ी रकमके चालू नोट रक्खे थे।

कान्तिभाईने पिताको घर आनेपर यह बात बतायी। सुनकर मट्टुभाईके दुःखका पार न रहा। उन्होंने विषादभरे हृदयसे कान्तिभाईसे कहा—

बूढ़ेने गजब किया। कल्पना भी नहीं थी कि बूढ़ा यों करेगा। इस टोकरेमें चालू नोटोंको वापस रख दो और उनके ऊपर फलोंको जचाकर जिस स्थितिमें टोकरा यहाँ लाया गया था, उसी स्थितिमें मकरपुरा जाकर उन गृहस्थको टोकरा वापस दे आओ। कह देना कि अब भविष्यमें इस घरके दरवाजे आपके लिये सदाको बंद हो गये हैं।

कान्तिभाईने पिताकी आज्ञाका तुरंत ही पालन किया।
(अखण्ड आनन्द)

—डा० मूळजी भाई पी० शाह

(६)

सफरका साथी

अप्रैल सन् १९५८की बात है। मैं अपनी बड़ी बहिनको ग्वालियर पहुँचानेके लिये, जहाँ कि मेरे बड़े भाई रहते हैं, गया। यह मेरी प्रथम यात्रा थी अपनी बहिनके साथ। बहिनको वहाँ सात-आठ दिन रुकना था, रिश्तेदारीका मामला था, इसलिये अपने गहने, वस्त्रादि सब साथ ले लिये। सब सामान लेकर बाँदीकुईसे ट्रेनमें बैठे और ८.३० सायंकाल आगरा पहुँचे। ज्ञात हुआ कि ग्वालियर जानेके लिये आगरा कैंट जाना पड़ेगा। इसीलिये बहिनके पास सारा सामान छोड़कर मैं रिक्शा लेने चला गया। एक अधेड़ अवस्थाके आँखोंसे पीड़ित व्यक्तिने भी रिक्शाके लिये जाते समय मुझसे कह दिया। मैं दो रिक्शा ले आया। हमारा सामान देखकर रिक्शावाला ले जानेके लिये इन्कार कर गया। निदान यह तय हुआ कि हमारा सामान (बेडिङ्ग, गहनेका सन्दूक और वस्त्रोंका सन्दूक) तथा उन सज्जनका बेडिङ्ग और अटेची एक रिक्शामें रखकर एक सवारी उसमें बैठे और दो सवारी एक रिक्शेमें। हमारा सामान तथा उनका अपना सामान रखकर एक रिक्शेमें हमने उन्हें कैंटके लिये रवाना किया और हम दोनों भाई-बहिन एक रिक्शामें बैठ गये। दोनों रिक्शा ५-५ गजकी दूरीपर रवाना हुए।

रातका समय—बिजलीकी चकाचौंध, सवारीके सभी साधनोंकी बाढ़में हम भी रिक्शा-तरंगमें बैठकर पार हो रहे थे। आगेवाला रिक्शा आँखोंसे ओझल हो गया। हमारा रिक्शा न जाने किधर मुड़ा—उधर केवल वही एक रिक्शा था। दोनों भाई-बहिन घबराये। मैं कुछ न कह सका, न सोच ही सका। मैंने रिक्शाको ठहराया और हमें भी उसी रास्ते ले चलनेको कहा, जहाँ होकर दूसरा रिक्शा स्टेशनको गया था। रिक्शावालेने कहा कि 'वहीं स्टेशनपर मिल जायगा, आपके साथवाला तो है ही; फिर घबराते क्यों हो?' बहिनने रुआसी अवस्थामें सारा किस्सा सही-सही कह सुनाया। इसी अर्सेमें स्टेशन दिखायी देने लगा, लेकिन रिक्शा नहीं। बहिनने रोना शुरू किया—'मैं तो कहींकी न रही। अब वह गहना मिल ही नहीं सकता। मोटा आदमी लूट ले गया।' मैंने रिक्शावालेसे वापिस आगरा फोर्ट चलनेको कहा तो वह पाँच रुपयेपर तैयार हुआ। लेकिन इस बार भी वह रिक्शा कहीं दिखायी नहीं दिया और हम पुनः कैंटपर खड़े-खड़े रातकी शान्तिको पीने लगे। बहिनने अपने जीवित न रहनेका निर्णय सुनाया और वह दाऊजी महाराजका स्मरण करने लगी। मैंने उसके गहनोंको कर्जके रूपमें स्वीकारकर चुकानेकी बात की और वापिस गाँव लौट चलनेको कहा। लेकिन वह कुछ सुन ही नहीं सकी। मैं मन-ही-मन श्रीहनुमान्‌जीका स्मरण करता रहा, मनौती मनाता रहा और यदि बहिन ही जीवित नहीं चलेगी तो मैंने भी किसी एंजिनकी शरण लेनेका दृढ़ संकल्प कर लिया।

लेकिन प्रभु सुन रहे थे। एक सिपाही हमारी स्थिति देखकर समझ गया और हमें भाई-बहिन सुनकर तथा सारा हाल जानकर अपने साथ मुसाफिरखानेमें ले गया। वहाँ एक व्यक्ति रजाईमें लिपटे कराह रहा था। हमारी आवाज सुनकर उसने मुँह उघाड़ते हुए कहा—'इतनी देर कहाँ लगायी। यह हालत कैसे?' बहिनने हिम्मत बाँधकर सारा हाल सुना दिया।

उसने हमारा सामान सँभलाया। बहिनने सन्दूकमें गहना सँभाला और उस व्यक्तिका गुणगान करते हुए हम तीनोंने भोजन किया। सवा दो बजे रातको गाड़ीमें हम तीनों ही रवाना हुए। धौलपुर स्टेशनपर गाड़ी रुकी। वह सज्जन वहाँ उतरते कह गये—'मेरा नाम

गङ्गाप्रसाद ठेकेदार है। कभी काम हो तो मिलना और अब आगेसे होशियारीसे जाना।'

बड़ी ही खुशीके साथ हम ग्वालियर पहुँचे। आज भी हमें श्रीगङ्गाप्रसादजीकी याद नहीं भूलती। हमारी आत्माएँ उनके चिरायु होनेकी कामना करती रहती हैं। ठेकेदारोंकी कई घटनाएँ सुननेमें आती हैं पर मैं तो गङ्गाप्रसादजीकी ईमानदारीमें किंचित् भी शंकालु नहीं। वास्तवमें श्रीगङ्गाप्रसादजी गङ्गाके समान ही पवित्र हैं। सफरके ऐसे साथी होना ही मानवता है।

जय बजरंग।

—बाबूलाल अग्रवाल, हिंदी साहित्य-सदन, सिकराय (जयपुर-राज०)

(७)

कुछ उपयोगी ओषधियाँ

(१)

सर्पविषनाशक

कदली (केला) के पेड़की छालका रस दो तोला निकाल लें, फिर काली मिर्च ७ नगका चूर्ण करके उस रसमें डालकर उसे पिला दें, जिसको सर्पने काटा है। यह दवाकी एक मात्रा है। दूसरी मात्रा एक घंटे बाद, तीसरी-चौथी मात्रा दो-दो घंटे बाद देनेसे मूर्च्छित मनुष्य अवश्य होशमें आ जायगा। इसमें संदेह नहीं है। यह निर्विवाद अनुभूत (आजमायी हुई) है। इसके पिलानेवाले रोगीको दूसरी ओषधि न पिलायी जाय। इस दवाका प्रयोग पशुओंपर भी हो सकेगा; परंतु मात्रा चौगुनी—आठ तोला है। (यह बड़े पशु घोड़ा, बैल, भैंसा, ऊँट इत्यादिकी पूर्ण मात्रा है। छोटे पशुओंका बलाबलके अनुसार दें।)

पता—कामदेवप्रतापसिंह, सिद्धसदन, भिखरी, पो० धनगढ़, जिला प्रतापगढ़ (उ० प्र०)

(२)

मनुष्य अथवा पशुको यदि सर्पने काट लिया हो तो इस वनौषधिसे निश्चित प्राण-रक्षा की जा सकती है। यह अनुभूत ओषधि हमारे पूर्वजोंसे प्रयुक्त होती चली आ रही है। वनस्पति गूमा, गोमा, गोमी आदि नामोंसे व्यवहृत होती है। यह वर्षा ऋतुमें बहुधा उत्पन्न होती और हर जगह मैदानों-खेतोंमें पायी जाती है। सभी ऋतुओंमें प्रायः प्राप्य है। ग्रीष्म ऋतुमें कुछ कठिनाईसे मिल पाती है। इसकी लंबाई लगभग ६ इंच तक होती है। पत्ते अरहरके पत्तोंके बराबर, किनारे कुछ कटावदार एवं फूलनेके समय तनेके अगले सिरेपर आँवले बराबर एक गोलाकार भाग निकल आता है। उसीमेंसे धवल रंगके छोटे-छोटे दो-चार फूल बाहर निकल आते हैं।

प्रयोग-विधि—इसकी हरी पत्तियोंको तोड़कर हाथसे मसलकर १०-१२ बूँद रस सर्पदंशसे पीड़ित प्राणीके नाकमें निचोड़ देना चाहिये। यह रस नाकसे साँसद्वारा ऊपरकी ओर खींचा जा सके, ताकि मस्तिष्क-प्रदेशतक पहुँच जाय। चेतनाशून्य (बेहोश) होनेके पूर्व इसका प्रयोग करा दिया जाय। पशुओंमें नाक ऊपर उठाकर डाल देना पर्याप्त है। २०-२५ मिनट बाद विष प्रभावहीन होने लगेगा और प्राणी शीघ्र ही विषमुक्त होकर स्वस्थ हो उठेगा। बिच्छूके डंक मारनेपर भी इसका प्रयोग लाभप्रद है।

इस ओषधिका प्रयोग निःस्वार्थभावसे करना नितान्त आवश्यक है। अन्यथा यह ओषधि उस व्यक्तिके लिये प्रभावहीन हो जायगी। अशुद्धावस्थामें यह न तोड़ी जाय।

शङ्का-निवारणके लिये निम्न पतेसे पूछ सकते हैं।

—सहदेवप्रसाद यादव, जिला पशुचिकित्सालय सीधी (म० प्र०)

सर्दीकी अचूक दवा

(१)

२ तोला साँवाका पुराना चावल लेकर तवेमें धीमी आँचमें भूजकर फिर थोड़ा-सा सेंधा नमक एवं एक चनेके बराबर शुद्ध घी उसमें मिलाकर प्रातः और रात्रिमें सेवन करनेसे सर्दी पूर्णरूपसे ४-५ दिनमें ठीक हो जाती है।

—शैलेन्द्रकुमार अवस्थी, १११ तुलाराम बाग, इलाहाबाद-६

(२)

सुहागेको भूनकर महीन पीस लिया जाय और किसी साफ शीशीमें भरकर रख दिया जाय। सर्दी लगनेपर चार रत्ती वह चूर्ण गरम जल या गरम चायके साथ दिनमें तीन बार दिया जाय। दो-तीन दिनोंमें ही सर्दी ठीक हो जायगी।

—रामविलास शर्मा, बिलासपुर

नेत्रोपयोगी निर्दोष ओषधि

नीमके पेड़पर लगा हुआ मधु कम-से-कम दो वर्ष पुराना आधी छटाँक (यदि शुद्ध कमल मधु मिल सके तो अति उत्तम) एक शीशीमें ले लें, उसमें श्वेत पुनर्नवाका रस दस बूँद डाल दें और जस्तेकी सींकसे मिला दें। दवा तैयार है। इस दवाको प्रातः तथा रात्रिको सोनेके समय दोनों आँखोंमें हाथकी अँगुलीसे अंजन करें तथा नित्य प्रति उपयोग करनेका नियम बना लें। नेत्र-ज्योति बढ़ेगी, चश्मा लगानेकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी और नेत्रोंकी सुन्दरता बढ़ेगी। अनेक लोगोंको लाभ हुआ है।

—डा० राधेश्याम रूँगटा, एच० एम० बी० (रजिस्टर्ड) ४७४, रवीन्द्र सरणी, कलकत्ता ५

रक्त-प्रदर तथा श्वेत-प्रदरकी दवा

पत्थर संगजरात (या घीया भाठिया) पाँच तोले
गेरू (या सोना गेरू) पाँच तोले।

दोनोंको महीन पीस लें, जिस माता-बहिनको खून आता हो, उसे पाँच-पाँच माशेकी पुड़िया ५-५ घण्टे बाद ताजा पानीसे दें। एक महात्माकी आशीर्वाद रूपमें बतायी हुई दवा है।

इसी दवाको श्वेतप्रदर (ल्यूकोरिया)में दो-दो माशे ५-५ घंटे बाद २१ दिनोंतक ताजा जलके साथ दें। दवाका सेवन करते समय गुड़, तली हुई तेलवाली चीजें, लालमिर्च तथा खटाईका सेवन न करें। नमकका भी कम प्रयोग करें तो अच्छा है।

(रक्त-प्रदरमें मुल्तानी मिट्टी भी बहुत लाभ पहुँचाती है। दो तोलेसे चार तोलेतक मुल्तानी मिट्टी जलमें घोलकर दिनमें एक बार तीन दिनोंतक पिला दें।)

वायु-दर्द—पेटमें गैस दूर होनेकी दवा

एक अम्बरी सेव लेकर उसमें एक तोला लौंग टोपीवाली (पूरी लौंग) लेकर एक-एक करके सभी सेवमें गाड़ दें। (गाड़ते समय भगवान् विष्णुकी तथा श्रीबजरंगबलीकी जय बोले।) फिर उस सेवको किसी रस्सीमें बाँधकर तीन दिनोंतक छतमें लटका दें, ताकि चींटियाँ न लग सकें। फिर प्रतिदिन प्रातःकाल (कुछ भी खाने-पीनेसे पहले), दुपहरको तथा शामको—यों तीन बार एक-एक लौंग चूसते रहें। इससे सिरदर्द भी मिटता है। आजमायी हुई दवा है। खटाई, तली चीजें, आलू, चावल आदि न खायँ तो अच्छा है।

—डा० बजरंगदास गोयल, टोहाना मण्डी

(८)

कुछ रोगोंके सहज सफल प्रयोग (अनुभूत)

१. कारबंकल फोड़ा—निरंबसी जड़ीकी जड़ गायकी बछियाके मूत्रमें घिसकर लगानेसे यह भयंकर फोड़ा मिट जाता है। जड़ बाजारसे मँगायी जाय। ताजी जमीनसे खोदकर निकाला जाय तो अति उत्तम है। जड़ खोदते वक्त ध्यान रक्खा जाय कि उसकी जड़में साँप तो नहीं हैं, हो तो उससे बचना चाहिये।

२. दर्द आधा सीसी—(क) मरवाके पौधेके पत्ते निचोड़कर जिस तरफ दर्द हो, उससे दूसरी तरफके नाकमें चन्द बूँदें डालनेसे आराम हो जायगा।

(ख) सूर्योदयके पहले एक कागजी नीबूका रस गुनगुने जलमें मिलाकर पिला दे और नीबूके रसकी पाँच बूँद सूर्योदयसे पूर्व जिस तरफ सिरमें दर्द हो, उसी ओरकी नाकमें टपका दें। दर्द मिट जायगा।

३. गलसुवे (Mumps)—पानमें खानेकी एक सुपारी पानीकी बूँदें डालकर साफ सिलपर आवश्यकतानुसार घिस ली जाय। पानमें खानेका सूखा कत्था बारीक पीसकर उसमें मिला दिया जाय। फिर दोनोंको एक मटियाले कागजपर लीपकर गलसुओंपर पूरा लगा दिया जाय। अगर गलसुवे हैं तो वह चिपक जायगा और पाँच-सात दिनोंमें आराम देकर उतर जायगा। गलसुवे नहीं हैं, तो नहीं चिपकेगा। यह रोग छूतका है। इसके रोगीको अलग रखना चाहिये और आरम्भसे ही देख-भाल रखनी चाहिये, नहीं तो रोग असाध्य हो जाता है।

४. बुखार (ज्वर)—(क) ज्वरमें पीपलका दातुन, जब सूर्य सुबहको आसमानपर आधा निकला हो और आधा न निकला हो, करनेसे ज्वर उतर जाता है।

(ख) फिटकरीका फूल एक माशा थोड़ी-सी चीनीके साथ मिलाकर जलसे ले लेनेपर भी ज्वर उतर जाता है।

५. अंजनहारी (गुहेरी)—जब आँखमें गुहेरी निकले तो पेटकी नाफ (नाभि) पर आकके पत्तेका दूध लगानेसे आराम हो जाता है। गुहेरीपर कभी न लगावें।

६. लगड़ीका दर्द (साइटिका-गृध्रसी)—इस रोगमें लहसुन और राईका सेवन लाभदायक है। कब्ज नहीं होना चाहिये। लौकीमें राई और नमक डालकर इसके अचारका सेवन करना फायदेमन्द होता है। मूलीमें भी राई और नमक डालकर सेवन करना लाभदायक है। दर्दके स्थानपर दो छटाँक तिलके तेलमें ४ या ५ पौथी लहसुनकी और आधी छटाँक गूगल डालकर पकाकर हल्की मालिस करना उपयुक्त होगा। इसमें रसटक्स (होमियोपैथिक दवा) बहुत काम करती है।

इन विषयोंमें कोई और बात ज्ञात करनी हो तो जवाबी पत्र भेजकर मालूम कर सकते हैं।

—डा० त्रिभुवननाथ शर्मा, १४ जी. टी. रोड, गाजियाबाद (उ० प्र०)

परम पूज्य श्रीहरिबाबाजी तथा अन्यान्य महानुभावोंको श्रद्धाञ्जलि

पिछले दिनों प्रातःस्मरणीय परमपूज्यचरण श्रीहरिबाबाजी भौतिक देहका परित्याग करके भगवद्धाममें पधार गये। पूज्य बाबा न केवल ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध थे, अपितु संत-समाजके परम आदर्श तथा देदीप्यमान अमूल्य रत्न थे। ज्ञानके साथ ही उनके जीवनमें पवित्र भगवत्-प्रेमका अनन्त भण्डार सोनेमें सुगन्धकी भाँति सुशोभित था। उनका जीवन मूर्तिमान् उपदेश था। सच तो यह है कि पूज्य बाबाने अपनी ओरसे जो कुछ उपदेश दिया, वह सारा-का-सारा ही, वचनसे नहीं, अपितु पल-पलके अपने महान् पवित्रतम कार्यसे। ऐसे वे महान् संत थे।

पूज्य बाबाको परचर्चा या परनिन्दा बड़ी अप्रिय थी। उन्होंने कभी किसीकी निन्दा सुनी ही नहीं। भगवान्, भक्त और भक्तिकी त्रिविध दिव्य सुधाधारासे ही उनका जीवन नित्य आप्लावित था। उसी भावनासे भावित रहना, उसीमें निमज्जित रहना—पूज्य बाबाके जीवनका सहज स्वरूप था।

सच्चे संत-महात्माओंका भौतिक-देह-सम्बन्ध तो कभीका परित्यक्त हो चुका होता है, वे पाञ्चभौतिक देहमें स्थित दीखनेपर भी वस्तुतः नित्य प्रभुमें ही सुप्रतिष्ठित रहते हैं। पूज्य बाबाजी इसी कोटिके महात्मा थे। वे पाञ्चभौतिक देहसे ऊपर थे। उनके देहत्यागका अर्थ तो है—भगवान्की नित्य भगवन्मयी लीलामें प्रवेश कर जाना। इस देह-त्यागसे पूज्य बाबाकी नित्य स्थितिमें कोई परिवर्तन नहीं आया। परिवर्तन आया—सांसारिक लोगोंके लिये, जो उनके बीचसे एक परम उच्च कोटिके महान् संत—संतत्वकी साकार सजीव मूर्ति दृष्टिसे ओझल हो गयी। पूज्य बाबाके देहत्यागसे इस प्रकारका एक अभाव हो गया है, जिसकी पूर्ति असम्भव है, भारतके आध्यात्मिक क्षेत्रकी यह एक भीषण क्षति है।

मेरे प्रति बाबाका चिरकालसे अहैतुक अत्यन्त स्नेह रहा। मैं पूर्ण श्रद्धा-भक्तिसहित परम पूज्य बाबाको अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ। मेरा विश्वास है कि उनके जीवनका दिव्य आदर्श नित्य नवीन पवित्र प्रेरणा प्रदान करता रहेगा।

(पूज्य बाबाके जीवन-सम्बन्धी कुछ बातें मार्चके अङ्कमें भक्त श्रीरामशरणदासजीके लेखमें प्रकाशित होंगी।)

इन्हीं पिछले दिनोंमें गोरखपुर, श्रीगोरखनाथ पीठके प्रसिद्ध धर्मसेवक महंत श्रीदिग्विजयनाथजीका अकस्मात् देहावसान गोरखपुरमें हो गया। तदनन्तर सनातनधर्मके सक्रिय प्रेमी श्रीछोटेलालजी कानोडियाने कलकत्तामें देहत्याग कर दिया। इन महानुभावोंके देहत्यागसे हिंदू सनातनधर्मकी बहुत बड़ी क्षति हुई है। अभी कुछ ही दिनों पहले हमारे 'गोविन्दभवन कार्यालय' ट्रस्टके, सम्मान्य वयोवृद्ध ट्रस्टी श्रीबद्रीदासजी गोयन्दका पटनामें चल बसे। ये मेरे पूजनीय पितृतुल्य थे। मैं इन सभीको हृदयसे श्रद्धाञ्जलि अर्पण करता हूँ।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

तीन नयी पुस्तकें ! प्रकाशित हो गयीं !!

श्रीमद्भागवतगान

(रचयिता—अनन्तश्री स्वामीजी श्रीरामदत्तजी पर्वतीकर 'वीणा महाराज')

आकार २०×३०=आठपेजी, पृष्ठ-संख्या २८०, सुन्दर कपड़ेकी जिल्द, मूल्य ४.५० पैसे, डाकखर्च १.४५।

श्रीपर्वतीकरजी संत तथा परमभागवत भक्त हैं। इन्होंने श्रीमद्भागवतके बारहों स्कन्धों तथा आदि-अन्तमें आये हुए भागवत-माहात्म्यकी कथाओंके स्वारस्यको पद्यरूपमें संग्रथित किया है। इसे एक प्रकारसे श्रीमद्भागवतका पद्यमय अनुवाद समझना चाहिये। यद्यपि इसकी भाषा 'संतई' है तथापि समझ लेनेपर बड़ी सरल और मीठी लगती है। इसे संत-वाणी समझकर पढ़ना-सुनना चाहिये, तभी यथार्थ मर्म समझमें आयेगा। आशा है, पाठकगण इस संत-रचित ग्रन्थसे लाभ उठायेंगे।

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (केवल सुन्दरकाण्ड—मूलमात्र, गुटका साइज)

आकार २२×३०=बत्तीसपेजी, गुटका साइज, पृष्ठ-संख्या ३६८, श्रीहनुमानूजीका सुन्दर तिरंगा चित्र, कपड़ेकी जिल्द, मूल्य १.२५ पैसे, डाकखर्च १.००।

अधिकतर लोग सुन्दरकाण्डके पाठका अनुष्ठान करते हैं, अतः उनके लाभार्थ यद्यपि पाठविधिसहित इस काण्डको अलग पुस्तकाकारमें प्रकाशित किया गया था; परंतु उसके आठपेजी साइजमें होनेके कारण पाठकोंको कुछ असुविधा होती थी। इसलिये गुटका साइजके लिये पाठकोंके बराबर आग्रहपूर्ण पत्र आते रहे। उनकी सुविधाके लिये यह नया गुटका-संस्करण छापा गया है। आशा है, जनता इससे लाभ उठायेगी।

संक्षिप्त महाभारत [प्रथम खण्ड] केवल भाषा

(आदिपर्व, सभापर्व, वनपर्व, विराटपर्व, उद्योगपर्व, भीष्मपर्व और द्रोणपर्व)

आकार २०×३०=आठपेजी, पृष्ठ-संख्या ८९६, सचित्र, कपड़ेकी जिल्द, मूल्य दस रुपये, डाकखर्च २.३५।

आजसे २७ वर्ष पहले 'कल्याण'के विशेषाङ्कके रूपमें तथा आगेके ग्यारह साधारण अङ्कोंमें महाभारतका संक्षिप्त अनुवाद छपा था, जिसे लोगोंने बहुत पसंद किया था। उसके बाद कई खण्डोंमें सम्पूर्ण महाभारत मूल-अनुवादसहित छापा गया, जिसका भी जनताने खूब आदर किया। परंतु आकार और मूल्यके बृहत् होनेके कारण वह सर्वसाधारणके लिये सुलभ नहीं था। इसलिये इस संक्षिप्त महाभारताङ्कके लिये लोगोंकी माँग बनी रही। भगवत्कृपासे इसे दो खण्डोंमें प्रकाशित करनेका प्रयास किया गया है, जिसका यह प्रथम खण्ड जनताकी सेवामें प्रस्तुत है। इसमें आदिपर्वसे लेकर द्रोणपर्वतक है। दूसरा खण्ड भी शीघ्र ही प्रकाशित करनेकी चेष्टा की जा रही है। आशा है, इससे लोग लाभ उठायेंगे।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

रजि० सं० एल्० १७५

राजस्थान अकाल-सेवामें गीताप्रेस-सेवादलका कार्य चालू है

राजस्थानके अकालमें 'गीताप्रेस-सेवादल' का सेवाकेन्द्र बीकानेरमें गतवर्ष अच्छी तरह चलता रहा। भगवान्‌की कृपासे बिना ही अपीलके स्थान-स्थानसे रुपये आते रहे। सरकारने भी पर्याप्त सहायता की, जिससे यत्किञ्चित् सेवाका—खास करके गो-सेवाका कार्य हुआ। इस कार्यमें सबसे अधिक श्रेय उन निःस्वार्थ तथा अनवरत उत्तरोत्तर अधिक उत्साहपूर्वक लंबे समयतक सेवाकार्य करनेवाले कार्यकर्त्ताओंको है। रुपयेकी आवश्यकता तो रुपयेसे पूरी होती है, परंतु काम करनेवाले उत्साही लोग न हों तो केवल रुपयेसे काम नहीं होता।

इस वर्ष आशा की जा रही थी कि राजस्थानमें अकाल नहीं पड़ेगा, परंतु दुर्भाग्यवश कई स्थानोंमें अकाल पड़ गया। 'गीताप्रेस-सेवादल' बीकानेरका सेवाकेन्द्र इसीलिये चालू रखना पड़ा। मनमें भय था कि शायद कार्यकर्त्ता अब थक गये होंगे, उनमें उतना उत्साह नहीं रहा होगा। पर जैसे समाचार मिले हैं, उससे उनमें विशेष उत्साह दृष्टिगोचर हो रहा है। कामका अधिक विस्तार न किया जाय—ऐसी सम्मति मिलनेपर भी गत माघ शुक्ल १२ के पत्रके अनुसार ७००० | ७५०० गौएँ केन्द्रमें हैं। एक गौपर एक रुपया रोजका खर्च समझा जाय तो लगभग दो लाखसे अधिक मासिक होता है। राजस्थान सरकार प्रत्येक गौके पीछे ६५ पैसे प्रतिदिनके हिसाबसे अनुदान दे रही है। इसके लिये गीताप्रेस-सेवादल उसका कृतज्ञ है। इतनी गायें अस्थायी रूपसे ही रक्खी गयी हैं और इतने बड़े पैमानेपर कार्य करनेकी स्थिति भी नहीं है। धीरे-धीरे काबूमें आने लायक संख्या हो जायगी। भगवान्‌का कार्य है। कार्यकर्त्ताओंमें जितना उत्साह रहेगा और सेवाके लिये आवश्यक धन भगवत्प्रेरणासे जितना आता रहेगा, उसी अनुपातसे कार्य होता रहेगा। गीताप्रेस-सेवादलकी ओरसे धनकी अपील नहीं की जाती, पर जो सज्जन अपनी इच्छासे इस कार्यके लिये कुछ भेजना चाहें वे 'गीताप्रेस-सेवादल', द्वारा गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस, गोरखपुरके पतेपर भेज सकते हैं। चेक-ड्राफ्ट आदि गीताप्रेसके नामके भेजने चाहिये।